चिदानन्द आत्मकथा

चिदानन्द आत्मकथा

Autobiography पुस्तक का हिन्दी अनुवाद
सादर प्रेमार्पण जन्म दिवस २४ सितम्बर २०२४

भावानुवादिका
स्वामी श्रीप्रियानन्द माताजी

प्रकाशक

द डिवाइन लाइफ सोसायटी
पत्रालय : शिवानन्दनगर- २४९१९२
जिला : टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय),
भारत www.sivanandaonline.org, www.dlshq.org

प्रकाशकीय

परम पूज्य स्वामी चिदानन्द जी महाराज ने, विश्व-कल्याणार्थ अति व्यस्त रहने तथा अति विनीत स्वभाव के कारण निजी अस्तित्व को कभी महत्ता नहीं दी। सद्गुरु भगवान् स्वामी शिवानन्द जी के एक सेवक रूप में ही जीवन पर्यन्त रहे, इसलिए अपनी आत्मकथा लेखन की आवश्यकता समझी ही नहीं। इस पुस्तक में स्वामीजी महाराज द्वारा लिखित कुछ आत्म-परिचयात्मक एवं आत्म-कथात्मक आलेखों एवं पत्रों को अत्यन्त सुन्दर रूप में संकलित किया गया है। इसमें प्रस्तुत उनके महान् जीवन- चरित की कतिपय झलकियाँ विदित कराती हैं कि किशोरावस्था के पूर्व से ही चिन्तनशील एवं अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के कारण, अध्यात्म सम्बन्धी उत्कट जिज्ञासाएँ उनके अन्तर में समाहित थीं। अपने गुरु-गोविन्द के प्रति सर्वस्व समर्पण से उनमें अवशिष्ट कुछ न रहा। अहंशून्यता की इस स्थिति में केवल शेष रहा - चित्-आनन्द - चिदानन्द ।

द डिवाइन लाइफ सोसायटी

अन्तर्विषय

प्रणामांजलि 7
सम्मिलन 8
आत्म परिचय 10
श्री गुरुदेव-चरणाश्रित 24
परमाध्यक्षीय प्रबोधन 35
पत्र एवं पत्रोत्तर अंश (पश्चिम की यात्रा-अवधि में) 40
शिरडी तीर्थ-संस्मरण 52
चिदानन्द हूँ ।। ॐ 56

श्रद्धा भाव पूरित

प्रणामांजलि

दिव्य परम सत्ता को सादर श्रद्धापूरित प्रणाम। इस धरती पर परमात्मा के प्रतिनिधि रूप में अवतरित सद्गुरुदेव को समादर प्रणिपात। हमारी आध्यात्मिक मातृभूमि भारतवर्ष के पावन सन्तों-महात्माओं, ऋषि-मुनियों, मनीषियों, भगवद्साक्षात्कार प्राप्त ब्रह्मज्ञानियों, अन्य महान् विभूतियों, यथा महर्षि व्यास, वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य, तथा अर्वाचीन युग के अन्यान्य कई महान् आत्माओं को प्रेमपूर्ण प्रणाम। वे महान् आत्माएँ, जिन्होंने शाश्वत सत्य का परमोच्च अनुभव प्राप्त कर लिया था, आध्यात्मिक ज्ञान-प्रकाश को विकीर्ण करने तथा प्रभु की अगाध भक्ति की अवर्णनीय आनन्दानुभूति को समकालीन सन्तों-भक्तों में प्रसारित करने हेतु जो इस धरती पर रहीं, उन सबके शुभाशीर्वाद हम सब पर हों।

सम्मिलन
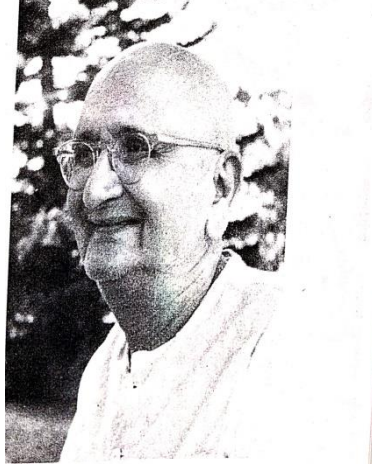
इस लोक में दो आत्माओं का प्रत्यक्ष मिलन सदैव प्रारब्ध कर्मानुसार ही सुनियोजित होता है। एक बार मिल लेने पर पुनः व्यावहारिक संसार में उस सम्बन्ध का नैरन्तर्य भी प्रारब्ध कर्मों के फलस्वरूप रहता है। सनातन धर्म अथवा वैदिक धर्म जो हिन्दू धर्म के नाम से प्रचलित है, उसमें इसका स्पष्टीकरण हुआ है। संसार में मानव रूप में उत्पन्न दो जीवात्माओं का मिलन भिन्न-भिन्न रूपों में होता है। सद्गुरु भगवान् श्री स्वामी शिवानन्द जी के श्री चरणों में मेरी आध्यात्मिक यात्रा सम्पन्न होने से पूर्व आनन्द-मूर्ति पूज्य पापा रामदास जी से मेरा सम्मिलन एक विशिष्ट ढंग से ही हुआ।

ॐ श्री राम
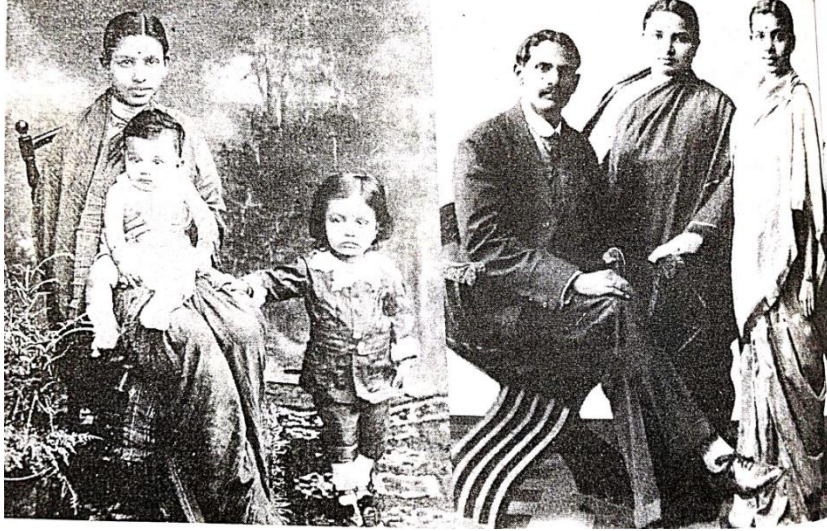
आत्म परिचय

दक्षिण भारत के पश्चिम समुद्र तटीय क्षेत्र में नदी किनारे बसा एक नगर मंगलौर मेरी जन्मभूमि है। वहाँ पर मेरे मातामह नेलीकई वेंकटराव तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सुन्दरम्मा का निवास स्थान था। वहीं पर २४ सितम्बर १९१६ को मेरा जन्म हुआ। वे दोनों अत्यन्त पवित्र एवं उदारहृदय थे। विशेषतया निर्धनों एवं जरूरतमन्दों की मदद में सदैव तत्पर रहते थे। मेरी जननी श्रीमती सरोजिनी देवी मेरे नाना-नानीश्री की बहुत लाड़ली सुपुत्री थीं। कारण कि इकलौती यही सन्तान थी, जो जीवित रह सकी। इनके जन्म से पूर्व कितने ही पुत्र मृत्यु को प्राप्त होते गये थे। अठ्ठाइस वर्ष की अवस्था में मेरी माताश्री की लौकिक यात्रा भी दैववश समाप्त हो गयी। उस समय तक वह पाँच बच्चों की माता बन चुकी थीं। जब वह स्वर्ग सिधारीं, मेरी बड़ी बहिन हेमलता बाई ग्यारह वर्ष की तथा मैं नौ वर्षीय बालक था। अपने परिवार में जैसे माताश्री अपने जननी जनक की लाड़ली थीं, इसी प्रकार मैं उस परिवार का पहला पुत्र होने के नाते सबका लाड़ला था। श्रीधर को अर्थात् मुझे अपनी मातामही तथा माताश्री के ममतापूर्ण पारस्परिक होड़ में अधिकाधिक लाड़-प्यार मिलता रहा। इस प्रकार मैं उनकी 'आँखों का तारा' बना रहा।

पिताश्री श्रीनिवास राव का परिवार मद्रास में रहता था। उनकी यह इच्छा

थी कि अब सब अपने घर मद्रास में आ जायें। मेरे मातामह तथा मातामही ने पिताश्री से साग्रह अनुनय विनय की; परिवार का प्रथम पुत्र होने के कारण मेरा लालन-पालन, उच्च पढ़ाई-लिखाई मंगलौर में ही होना समुचित रहेगा। उनकी हार्दिक लालसा-उत्कण्ठा को पहचान कर मेरे पिताश्री द्वारा सहमति प्रदान करना अप्रत्याशित तथा विस्मयजनक था। इस प्रकार मंगलौर शहर में उच्च शिक्षा ग्रहण करते हुए जीवन के १६ वर्ष व्यतीत हो गये।

मंगलौर शहर पापा रामदास जी के निवास स्थान कन्हनगढ़ के समीपस्थ था। सन् १९२३ में पापा रामदास जी का सम्पूर्ण वर्ष भारत-भ्रमण में व्यतीत हुआ था। वापिस आने पर मंगलौर शहर के बाहर कदरी-पहाड़ियों की गुफा में सतत राम-नाम का जप करते हुए आनन्दपूर्वक एकान्तवास किया। वहाँ पर उन्हें अपने यात्रा - वृत्तान्त को लिखने की अन्तः प्रेरणा हुई और सन् १९२४ की अवधि में उन्होंने इस कार्य को पूर्ण भी कर लिया। वहाँ के एक सज्जन श्री बोलर विठ्ठल राव, जो नानाश्री के मित्र भी थे, उनकी 'सरस्वती' नामक प्रिंटिंग प्रेस में यह पुस्तक अंग्रेजी में 'इन क्वेस्ट ऑफ गॉड' अर्थात् 'ईश्वर की खोज में' प्रकाशित हो गयी। नानाश्री को इसकी प्रथम प्रति अपने मित्र द्वारा भेंट में प्राप्त हुई थी। एक दिन उस पुस्तक पर मेरी दृष्टि पड़ गयी। कवर पेज पर पापा रामदास जी के मनमोहक चित्र को मैं देखता ही रह गया। जैसे-जैसे मैं चित्र को निहारता रहा, उसी में रमता गया। सबकी नजर बचाकर, ऊपरी मंजिल के हॉल में बैठकर प्रतिदिन दोपहर को उस पुस्तक को आदि से अन्त तक पढ़कर मैंने एक सप्ताह में पूर्ण कर दिया।

उस समय मैं नौ वर्षीय मातृ-विहीन बालक ही था। चतुर्थ श्रेणी का छात्र था। इस पुस्तक को पढ़ने से मुझे भारत देश का सिंहावलोकन हो गया जिससे अब तक मैं पूर्णतया अपरिचित था। देश के विभिन्न धार्मिक स्थानों का पता चला, जो मेरी कल्पना में भी नहीं थे। 'हिमालय' में सुस्थित 'बद्रीनारायण' तथा 'केदारनाथ' मन्दिर, कलकत्ता के पास 'दक्षिणेश्वर' के श्री रामकृष्ण परमहंस का तथा भवतारिणी के 'काली मन्दिर' इत्यादि का प्रथम परिचय मिला। 'अन्नक्षेत्र', 'भिक्षा' 'राम-भजन' आदि शब्द मेरे शब्दकोष का अंग बन गये। 'समाधि', 'भावातीत अवस्था', शब्दों से पहली बार परिचित हुआ।

भारतवासियों की जीवनशैली का एक नया परिदृश्य मेरे सम्मुख सुस्पष्ट हुआ। अब तक की मेरी दिनचर्या तो घर से विद्यालय और विद्यालय से घर तक ही सीमित थी। जब से इस पुस्तक को पढ़ना प्रारम्भ किया, उस समय से स्वामी रामदास जी से प्रत्यक्ष मिलन की उत्कण्ठा-ललक जाग्रत हो गयी थी। परन्तु उनका अता-पता मालूम न था। जब हमारे घर भिक्षा हेतु कोई साधु आते तो मैं तुरन्त पुस्तक लाकर फोटो दिखाते हुए उनके बारे में पूछताछ किया करता। किसी से भी कुछ पता न चलने के कारण मैं निराश हो गया था। आखिरकार एक दिन एक साधु द्वारा ज्ञात हो ही गया कि स्वामी रामदास जी का आनन्दाश्रम, मंगलौर के निकट ही कन्हनगढ़ रेलवे स्टेशन से एक दो मील की दूरी पर है। अब तो मैं यथासम्भव शीघ्रातिशीघ्र ही उनके दर्शनार्थ जाना चाहता था।

सन् १९३२ की बात है। पिता श्री की अभिलाषा थी कि मैं और छोटा भाई राघवेन्द्र, हम दोनों मद्रास पितृगृह में आकर अग्रिम शिक्षा ग्रहण करें। शिक्षण अंग्रेजी माध्यम से शुरू हुआ, क्योंकि हमें तमिल भाषा का ज्ञान नहीं था, दूसरी भाषा संस्कृत ली थी। इस प्रकार देववाणी द्वारा अपने देश की ज्ञान-निधि के सम्पर्क में आने का भी सौभाग्य मिल गया। अपने पूर्वजों के धर्म सम्बन्धी वचनामृत, पवित्र चरित्र, आचार-व्यवहार, धर्मनिष्ठा एवं जीवन के उच्चादर्श इत्यादि हमको वैदिक ज्ञान तथा 'सुभाषित' द्वारा प्राप्त हुए। इस समय तक मेरी बड़ी बहिन हेमलता बाई का पाणिग्रहण चिदम्बरम् शहर के पास अन्नमलाई यूनिवर्सिटी के संस्कृत-प्रोफेसर के साथ हो चुका था और अब वह गर्भवती थीं। माताश्री के जीवित न रहने से प्रथम प्रसव के लिए नानी-नानाश्री के घर मंगलौर जाना अनिवार्य होने के

कारण उन्हें वहाँ छोड़ आने का मुझसे आग्रह किया गया, जिसे पूर्ण कर दिया गया। प्रसव काल के तीन-चार मास पश्चात् बहिन की तरफ से पुनः सन्देश प्राप्त हुआ कि प्रथम सन्तान के जन्मोपरान्त पहले उन्हें अपनी ससुराल कोयम्बतूर ले जाना है, तदुपरान्त अन्नमलाई पहुँचाना है।

इस प्रकार मंगलौर जाने का सुअवसर पुनः प्राप्त होने पर मैं अति प्रसन्न था। मद्रास-मंगलौर मेल में यात्रा करने तथा रास्ते में कन्हनगढ़ रेलवे स्टेशन को देखने पर तो अन्तर्मन अभिभूत हो उठा। भावावेश में मैं उतरने ही लगा था कि एकाएक ख्याल आ गया कि रास्ते में रुकना उचित नहीं, क्योंकि मंगलौर स्टेशन पर कोई मेरी प्रतीक्षा में खड़ा होगा। इसलिए यात्रा स्थगित करने का विचार छोड़ दिया। घर पहुँच गया। विशेष कारणवश तीन चार दिन के लिए बहिन हेमलता बाई को वहाँ से प्रस्थान स्थगित करना पड़ा था। इस अवधि में कन्हनगढ़ जाने का सौभाग्य-सुअवसर प्राप्त हुआ जानकर प्रसन्नता का पारावार न था। नानाश्री से अनुमति तथा कुछ धनराशि लेकर मैं चल पड़ा। मंगलौर से ट्रेन पकड़ कर कन्हनगढ़ पहुँच गया।

वहाँ उतरकर स्वामी रामदास जी के आनन्दाश्रम का रास्ता पूछते-पूछते अचानक अपने को आश्रम के मुख्य द्वार पर खड़ा पाया। अन्दर प्रवेश करने पर देखा कि भजन हॉल, जहाँ मुझे जाना था, वह कुछ दूरी पर है। वहीं पर स्वामी रामदास जी अपना मध्याह्न भोजन कर रहे थे। उनके दर्शन की मेरी तीव्र उत्कण्ठा देखकर उनके सेवक अनौपचारिक ढंग से मुझे सीधे उनके पास ले गये। अन्ततः मेरे हृदय की चिराकांक्षित अभिलाषा पूर्ण हुई; सपना साकार हो गया। मैं 'इन क्वेस्ट ऑफ गॉड' पुस्तक के रचयिता के समक्ष खड़ा था। स्वामी रामदास जी ने प्रेमिल मुस्कान से मेरा स्वागत किया। कुर्सी के सामने स्टूल पर रखे तकिए के ऊपर उनकी टाँगें थीं। घुटने टेककर उनके सम्मुख मैंने प्रणाम किया। फिर उनके दोनों चरणकमलों को हाथों में लेकर अपने सिर को उन श्री चरणों के नीचे रख दिया। मृदुता से उनके सुकोमल चरणों को अपने शीश पर रखकर शुभाशीर्वादित हुआ। इस प्रकार पापा रामदास जी के प्रथम दर्शन से ऐसी सुखद अनुभूति हुई जैसे 'धरती पर स्वर्ग' उतर आया हो। तदुपरान्त, मेरे और उनके मध्य कुछ वार्ता हुई। मैंने कई प्रश्न पूछे। उत्तर भी मिल गये। कुछ प्रश्नों के उत्तर के लिए उन्होंने मुझसे प्रश्न पूछे।

फिर उन्होंने मुझे भोजन करने का आग्रह किया। मुझे याद आता है कि वह वात्सल्यमयी पूज्या कृष्णाबाई माता जी ही थीं जिन्होंने ममतापूर्वक मुझे भोजन कराया था। भोजनोपरान्त अल्प विश्राम किया। उन सबने मुझे रात्रि पर्यन्त रुकने का आग्रह किया किन्तु मैंने उन्हें अवगत कराया कि उसी दिन वापिस पहुँचना अत्यावश्यक है। फिर मुझे वह 'द विज़न' पत्रिका के कार्यालय में ले गये; जहाँ मैंने 'इन क्वेस्ट ऑफ गॉड' की एक नयी प्रति खरीद ली। तत्पश्चात्, पूज्य पापा से विदा लेकर कन्हनगढ़ स्टेशन से मंगलौर की गाड़ी पकड़ कर घर वापिस पहुँच गया। मधुर राम-नाम से प्लावित आनन्दाश्रम की पवित्र भूमि का वह अविस्मरणीय अनुभव आज भी मेरे स्मृति पटल पर ज्यों का त्यों अंकित है।

श्री एम. एस. कामत एक विख्यात लोकप्रिय प्रकाशक तथा लेखक, उन दिनों (सन् १९३०-४० में) 'सण्डे टाइम्स' नामक एक रविवारीय समाचार पत्र मद्रास से प्रकाशित किया करते थे। यह अत्यधिक जनप्रिय समाचार पत्र था; कारण कि इसमें विविध विषयों-विषयक लेख प्रकाशित होते थे जिसमें सदैव कम से कम एक पृष्ठ पर अथवा कभी-कभी दो पृष्ठों पर धर्म सम्बन्धी लेख एवं समाचार प्रकाशित होते थे। एक रविवारीय समाचार पत्र के निर्धारित धर्म विषयक पृष्ठ पर स्वामी रामदास जी का चित्र देखकर मुझे सुखद आश्चर्य हुआ। साथ ही यह सूचना पढ़कर उल्लसित हुआ कि नगर के सारस्वत समुदाय के निमन्त्रण पर वह मद्रास आयेंगे और प्रवचन भी करेंगे। निश्चित दिनांक-समय-स्थल सहित सभा का कार्यक्रम प्रकाशित था। एक सायं उनका प्रवचन सुप्रसिद्ध गोखले हॉल (सभागार) में था। दूसरे दिन, मध्याह्न उनके दर्शन, प्रवचन, भजन के साथ-साथ, सत्संगोपरान्त भोजन का भी अनौपचारिक कार्यक्रम था। गोखले हॉल कैसे पहुँचा जाए, इसकी जानकारी मैंने विस्तार से प्राप्त कर ली थी।

कारण कि, हमारा पारिवारिक निवासस्थान, नगरीय भीड़-भाड़ से बहुत दूर नगरोपरान्त - जहाँ म्यूनिसिपल कार्पोरेशन की सीमा समाप्त तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का क्षेत्र प्रारम्भ होता था, वहाँ अवस्थित था।

जब मैं गोखले हॉल पहुँचा तो पाया कि वह ठसाठस भरा हुआ था। मैं वहाँ प्रविष्ट भी नहीं हो सका। सभी कुर्सियों पर श्रोतागण आसीन थे। बहुत से लोग पीछे खड़े हुए थे। मुझे हॉल ढूँढने में समय लग गया था। जब मैं पहुँचा तो पापा रामदास जी पहले से ही प्रवचन कर रहे थे। मेरी आँखों ने एक अनोखा दृश्य देखा। सामान्यतः मंच पर बैठने की औपचारिक व्यवस्था (जैसे सामने एक मेज और उसके पीछे कुछ कुर्सियाँ) दृष्टिगोचर नहीं हुई। उनकी सहमति से ही कुर्सियाँ दीवार तक पीछे खिसका दी गयी थीं और मेज को आगे मंच के एकदम किनारे तक लगा दिया गया था। एकदम सीधा तना हुआ शरीर रखते हुए, पालथी लगा कर वह अपनी सहज मुद्रा में मेज पर विराजमान थे। अपने कथनानुसार भाव-मुद्राएँ एवं हाथों का समुचित संचालन हो रहा था। वह कोंकणी भाषा में प्रवचन कर रहे थे। उनके श्रीमुख से शब्द-धारा अविरत प्रवाहित हो रही थी। वह ईश्वर-प्रेरित मनः स्थिति में थे। वह राम-नाम की महिमा तथा अनुशासनात्मक जीवन-यापन की महत्ता पर प्रकाश डाल रहे थे। श्रोतागण मन्त्रमुग्ध हो उनके श्री मुख से निःसृत शब्दों का पान तथा कथन का श्रवण कर रहे थे।

वहाँ से चलने के पूर्व आयोजकों से मद्रास में पापा के ठहरने के स्थान के बारे में मैंने ज्ञात कर लिया था। मुझे बताया गया कि वह प्रसिद्ध सेन थोम कॉलोनी में डॉ० गोपाल कतरे के गृह में ठहरे हुए थे। मद्रास के सुप्रसिद्ध समुद्रतटीय मरीना के दक्षिणीय अन्तिम छोर पर जहाँ मरीना समुद्री तट की सड़क समाप्त होती थी, वहाँ से यह आवासीय कॉलोनी प्रारम्भ होती थी। दूसरे दिन पावन सन्त के दर्शनार्थ एवं सत्संग की उत्कट लालसा के साथ चेतपट से मयलापुर बस टर्मिनल पहुँचा। सेन थोम पहुँचने के लिए मैं पूर्वाभिमुख हो समुद्र तट की दिशा में पैदल ही चलने लगा। सेन थोम से समुद्र के समानान्तर एक लम्बी सड़क है, जिसके दोनों ओर कुछ आवासीय भवन अवस्थित हैं। जब मैं मयलापुर कॉलोनी पार कर सेन थाम रोड पहुँचा, तब मैंने दो व्यक्तियों से डॉ० कतरे के निवास स्थान के विषय में पूछा तो उन्होंने सुनिश्चित जानकारी के अभाव में अस्पष्ट सा उत्तर दे दिया। वास्तव में जिस स्थान पर मैंने

इन व्यक्तियों से पूछा था, वहाँ से बायीं ओर डॉ० कतरे का निवास स्थान मात्र एक फर्लांग की दूरी पर था। अनभिज्ञता के कारण मैं दायीं ओर मुड़ गया और लगातार चलता रहा। कभी-कभी रुक कर स्थानीय व्यक्तियों से डॉ० कतरे के निवास स्थान के विषय में पूछ लेता। भीषण गर्मी में मैं एक मील से अधिक चल चुका था। आगे पहुँच कर मैं फिर रुका और एक सज्जन से पूछा जो एक भक्त जान पड़ता था; सम्भवतः दक्षिणी कन्नड़ व्यक्ति था। उसने उत्तर दिया, "ओह, डॉ० कतरे ! आपका अभिप्राय है, जहाँ पावन महापुरुष स्वामी रामदास जी ठहरे हुए हैं?" सोत्साह सिर हिलाते हुए मैंने कहा, "जी हाँ!" उसने बताया कि "आप विपरीत दिशा में आ गए हैं, एक एक कदम चलते रहने से और दूर होते गये। मयलापुर के मोड़ तक उसी मार्ग से लौटना होगा। मोड़ को पार करके अपनी दायीं ओर मुड़ने पर उनके अपने ही बाग में स्थित एक द्वितला भवन देखने को मिलेगा।" उसको धन्यवाद देते हुए मैं उसी मार्ग से लौट पड़ा। चिलचिलाती धूप के कारण पसीने से तरबतर हो गया था। अब तक मध्याह्नोत्तर हो चुका था। अन्ततोगत्वा डॉ० कतरे का निवास स्थान मिल गया।

मैंने भवन में प्रवेश किया और सीढ़ियाँ चढ़ गया। मुझे बताया गया कि नगर में किसी नियोजित सम्मिलन (भेंट) के लिए स्वामीजी प्रस्थान के लिए तैयार थे। अतः उचित यही था कि शीघ्रता की जाए और इस सुअवसर को हाथ से न जाने दिया जाए। मैं सीढ़ियों पर दौड़ा और द्वितीय तल पर पहुँच गया। स्वामी रामदास जी खड़ाऊँ पहने, हाथ में छड़ी पकड़े नीचे उतरने के लिए सीढ़ियों पर आ रहे थे। एक सज्जन मुझे उनके सम्मुख ले गए, तथा उन्हें बताया, "यह नवयुवक आपके दर्शनार्थ एवं आशीर्वाद प्राप्त्यर्थ आया है।" तत्क्षण नीचे झुककर सिर से उनका चरण स्पर्श किया। स्वामी रामदास जी एक हाथ छड़ी पर धरे झुके और दूसरे हाथ से हार्दिक स्नेह-सहित मेरी पीठ पर जोरदार थपकी दी। उन्होंने कहा, "रामदास के आशीर्वाद आपके साथ हैं। रामदास ने अभी प्रस्थान करना है। राम नाम जपो। भगवान् का स्मरण करो।" और वह नीचे कार की ओर चले गये। आनन्दाश्रम में हुई प्रथम भेंट-दर्शनोपरान्त, यह मेरी द्वितीय संक्षिप्त भेंट थी।
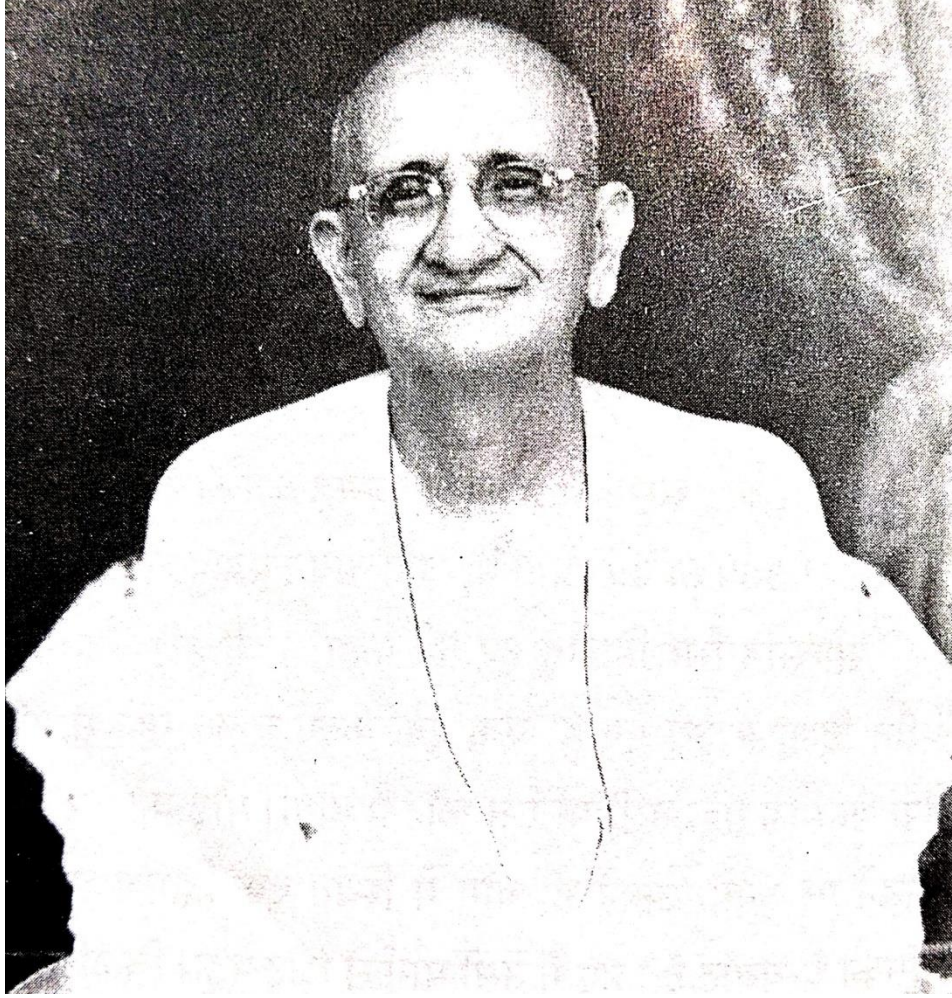
दो वर्ष पश्चात् विश्वयुद्ध के कारण ब्रिटिश अधिकारी पूर्वी तट को असुरक्षित समझने लगे थे। तीन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्ट्रीट मद्रास बन्दरगाह सहित ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा खाली करवा दी गयी थीं। मद्रास के सभी घरों में अन्धेरा रखना अनिवार्य हो गया था। यहाँ तक कि किसी भी गृह में बत्ती का प्रकाश अथवा मोमबत्ती की प्रकाश-किरण भी नहीं होनी चाहिए। नगरवासियों ने घरों की सभी खिड़कियाँ बन्द कर दी थीं। सूर्यास्त के उपरान्त नगर कब्रिस्तान सा दिखायी देता था। गवर्नर के आदेशानुसार नगर-मेयर ने यह घोषणा कर दी थी, "नगरवासियों की सुरक्षा तथा बचाव के लिए किसी भी प्रकार का आश्वासन नहीं दिया जा सकता। समस्त नगरवासियों को कहीं दूर अथवा अपने सम्बन्धियों के घर स्वरक्षार्थ चले जाना चाहिए। उनके द्वारा नगर खाली करने के लिए विशेष रेलगाड़ियाँ चलाने की व्यवस्था कर दी जायेगी।"

मेरी आयु इस समय पच्चीस वर्ष की हो गयी थी। मेरे बड़े चचेरे भाई, मैं और संयुक्त परिवार के कुछ अल्पवयस्कों को मद्रास से कोयम्बतूर, जहाँ हमारी पारिवारिक जागीरदारी थी, जाने की व्यवस्था की गयी थी। आज भी मैं यह समझने में असमर्थ हूँ कि किस प्रकार मद्रास के एक बड़े बंगले से, जो हमारा बचपन का निवास स्थान था, छोड़ देने की इस जटिल प्रक्रिया द्वारा महानगरी कोयम्बतूर में वास करने हितार्थ अपने आपको हम समायोजित-व्यवस्थित कर पाये।

आध्यात्मिक यात्रा का श्री गणेश

सन् १९३२ से १९४२ तक के लगभग दस वर्षों से, जब से मैंने मंगलौर छोड़ा और मद्रास पहुँचा, तब से ही मेरे अन्तर्मन में शनैः शनैः एक आन्तरिक रूपान्तरण हो रहा था। तीन आध्यात्मिक सरिताओं का स्थायी पावन संगम मेरे जीवन में उद्भूत हो चुका था। मद्रास में ही सन् १९३३ के लगभग 'गॉस्पल ऑफ श्री रामकृष्ण' पुस्तक से प्रभावित मैं उनके वशीभूत हो चुका था। द्वितीय, एम० एस० कामत द्वारा प्रकाशित 'सण्डे टाइम्स' के एक विशेषांक में नवयुवक रमण महर्षि के विद्यार्थी जीवन के मात्र सत्रह वर्ष की आयु में ही परित्याग विषयक विशिष्ट लेख पढ़ा। उसमें उनका फोटो भी था। इस लेख से मेरे भीतर त्याग की भावना प्रस्फुटित हुई और आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने का विचारोदय हुआ। तृतीय, श्री पी० के० विनयरंगम द्वारा प्रकाशित 'माई मैगज़ीन ऑफ इंडिया' में मुद्रित स्वामी शिवानन्द जी के आध्यात्मिक साहित्य तथा उनके अमृत-वचनों की एक पुस्तक का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया था। इन तीनों सन्तों ने इस एक ही केन्द्रीभूत विचार को बार-बार दोहराते हुए मेरे मन में अंकित कर दिया -

"जीवन का लक्ष्य है भगवत्साक्षात्कार। भगवत्साक्षात्कार में ही जीवन की अर्थवत्ता है। भगवत्साक्षात्कार किए बिना ही यदि आप मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं तो आपका जीवन व्यर्थ है। मानो आपने प्रभु-प्रदत्त बहुमूल्य मानव जन्म-जीवन उपहार को व्यर्थ ही गँवा दिया।"

अब मेरा हृदय वैराग्य की प्रचण्ड अग्नि से संपूरित हो चुका था। संसार- परित्याग और सुदूर हिमालय में कहीं भी एकान्तवास के अहर्निश विचार ने मेरे मन पर आधिपत्य जमा लिया था। मैं दुविधा में था। यद्यपि मैं अविवाहित था

और इस दृष्टिकोण से पूर्णतया मुक्त भी था, किन्तु स्वयं को स्वधर्म कर्तव्य-बन्धन से और पारिवारिक कनिष्ठों और वरिष्ठ जनों के प्रति, जिनकी मुझे सेवा करनी थी, दायित्वों से अपने को बद्ध समझता था। पिताश्री का स्वास्थ्य उत्तम नहीं था; साथ ही साथ मद्रास से विवश गमन के आघात से उनका भावुक हृदय आहत हो चुका था। ज्येष्ठ पुत्र के नाते स्वकर्तव्य पूर्ति हितार्थ मैं घर में रुकने को बाध्य हो जाता था। दूसरी ओर लौकिक बन्धनों के विच्छेदन की उत्कट अभिलाषा मुझे सशक्तता से अपनी ओर खींचती थी।

प्रायः मध्य रात्रि-उपरान्त एकाएक मेरी नींद उचट जाती और मैं इस विचार-भय से कम्पित हो जाता कि क्या मैं कभी भी निवृत्ति-पथ का पथिक नहीं बन पाऊँगा? इस विचार संघात ने मुझे प्रचण्ड वैराग्य, भक्ति-युक्त त्याग-तपस्या और गहन ध्यान-हितार्थ तुरन्त आवश्यक पग उठाने के लिए अत्यधिक बाध्य कर दिया था।

आर० एस० पुरम निवास स्थान में जैसे तैसे अब आठ-नौ महीने व्यतीत हुए थे। मैंने बलवती दृढ़ता से यह महसूस किया कि मुझे अब और विलम्ब नहीं करना चाहिए। अधिक प्रतीक्षा किये बिना अब शीघ्रातिशीघ्र अविलम्ब अन्तिम कदम उठा लेने की उत्कटता मेरे अन्तर्मन को प्रेरित तथा उद्वेलित कर रही थी। धीरे-धीरे मन में एक योजना ने यह रूप धारण किया। मैं घर से यह सूचित करके जाऊँगा कि भगवान् वेंकटेश्वर के दर्शनार्थ पावन तिरुपति धाम जाकर कुछ दिन वहाँ वास करना है। मैं जानता था कि इससे वे सब सहर्ष सहमत होंगे। कारण कि सम्पूर्ण परिवार तिरुपति भगवान् का ही आराधक-उपासक था, तथा मैंने नीचे तिरुपति शहर से समूचे सप्तगिरि पर पैदल चलकर तिरुमला जाने की प्रतिज्ञा की हुई थी। ऐसा सूचित कर मैंने घर का त्याग किया।

तिरुपति स्थानम् से मैंने पत्र लिख दिया कि शिरडी साईं बाबा समाधि स्थल जाने के लिए भी मैं इसी प्रकार वचन-बद्ध था। दोनों पुण्य स्थानों की यात्रा तथा भगवान् के दर्शनार्थ आने की योजना यथार्थ और यथोचित थी। किन्तु लौटकर आने का मेरा विचार कदापि नहीं था। मेरा यह परित्याग सदा के लिए था। जो महत्त्वपूर्ण कदम जीवन में उठाने जा रहा था, उससे सम्बन्धित मैं पहले से ही पाँच आध्यात्मिक महापुरुषों से आशीर्वाद प्राप्त्यर्थ पत्र लिख चुका था। एक पत्र भगवान् श्री रमण महर्षि जी को, एक स्वामी रामदास जी को, एक स्वामी राजेश्वरानन्द जी को (सुविख्यात दार्शनिक डॉ० टी० एम० पी० महादेवन के गुरु), चौथा पत्र तिरुपति धाम से दस मील दूर व्यास आश्रम येरपेडू आन्ध्रप्रदेश के पूज्य मलयाला स्वामी जी को। गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी के सम्पर्क में तो पत्र- व्यवहार द्वारा मैं पूर्ववत् ही था। श्री रमण महर्षि जी का उत्तर संक्षिप्त था, उसके द्वारा मुझे सूचित किया गया कि मेरा पत्र भगवान् के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया था। भगवान् का प्रसाद विभूति तथा कुमकुम की पुड़िया पैकेट संलग्न था। स्वामी रामदास जी का उत्तर विशिष्ट प्रकार का था। स्वामी जी ने लिखा था- "प्रिय राम ! आपने यह तो लिखा ही नहीं कि आप कौन-सा, कैसा कदम उठाने जा रहे हैं? अतः बिना जाने रामदास कैसे आशीर्वाद दे? तथापि समस्त शुभ कार्यों के लिए रामदास का आशीर्वाद है।"

जहाँ जहाँ, मैं भ्रमण कर रहा था, मैंने पत्र द्वारा घर से सम्पर्क बनाये रखा, जैसे कि मैंने लौटना हो। जबकि वापसी का इरादा मेरा बिल्कुल नहीं था। इस भ्रम में रखने का एक कारण तो यह था मैं अकस्मात् ही उनको असहनीय कठोर आघात नहीं पहुँचाना चाहता था कि मैं सदैव के लिए उनसे दूर चला गया और वे मुझे पुनः कभी भी नहीं देख पायेंगे। क्योंकि उन दिनों हिमालय भारत का एक सुदूर क्षेत्र समझा जाता था। शिरडी में एक मास ठहरने के उपरान्त मैंने परिजनों को पत्रचिदानन्द आत्मकथा लिख दिया कि मैं मथुरा-वृन्दावन जाना चाहता था। वृन्दावन पहुँचने पर श्री रामकृष्ण सेवा आश्रम में तीन सप्ताह व्यतीत किये। मथुरा भी दर्शनार्थ गया था। वृन्दावन से मैंने श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज को पत्र लिख दिया था, "मैं आपके श्री चरणों में समर्पित होने तथा महाराज श्री की सेवा-हेतु आश्रम आ रहा हूँ।" प्रत्युत्तर मिला - "आपका पत्र प्राप्त हुआ। ओ जी हाँ, आप आ सकते हैं। आदर, प्रेम और ॐ।"

वहाँ से दिल्ली गया। दिल्ली से हरिद्वार पहुँचने पर मैं श्री रामकृष्ण सेवा आश्रम, कनखल में रुका। मद्रास मठ के स्वामी अशेषानन्द जी का पत्र दिए जाने पर सब मेरे प्रति बड़े दयालु रहे। यहाँ कनखल के अध्यक्ष स्वामी अजयोनन्द जी थे। वह गुरुदेव से भली-भाँति परिचित थे। १९ मई १९४३ को बुद्ध जयन्ती अथवा बुद्ध पूर्णिमा के पावन दिवस पर ऋषिकेश जाने के लिए मैंने उनसे विदा ली। ऋषिकेश शहर से डेढ़ मील दूरी पर शिवानन्द आश्रम में मध्याह्नोत्तर पहुँचा। वहाँ सन्निकट एक रामाश्रम धर्मशाला में मुझे किसी ने एक हॉल के कोने में ठहरने का स्थान दिया।

सूर्योस्तोपरान्त, सान्ध्य चन्द्र-प्रकाश में श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज हाथ में बड़ा डंडा लिये आश्रम के ऊपरी भाग से नीचे की ओर आए। उनके पीछे एक ब्रह्मचारी हाथ में हरीकेन लालटेन लिये हुए था। जैसे वे निकट पहुँचे, तत्क्षण मैंने धरती पर लेटकर साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया। उन्होंने पूछा, "यह कौन है?" सहवर्तियों ने बताया, "यह श्रीधर राव है, जो मथुरा से पत्र व्यवहार करता रहा।" उन्होंने कृपा-पूरित शब्दों में कहा, "उठो सौम्य !"

मैंने वैसा ही किया। मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मैं अपने गन्तव्य पर पहुँच गया। परमात्मा के आशीर्वाद से मैंने अपने आपको सौभाग्यशाली पाया। इस प्रकार मेरा सम्पूर्ण जीवन सद्गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी के श्रीचरणों में पूर्णरूपेण समर्पित हो गया। संसार के बाह्य धरातल पर यह भौतिक यात्रा का तो चरम बिन्दु था, और आध्यात्मिक यात्रा का श्री गणेश शुभारम्भ ।
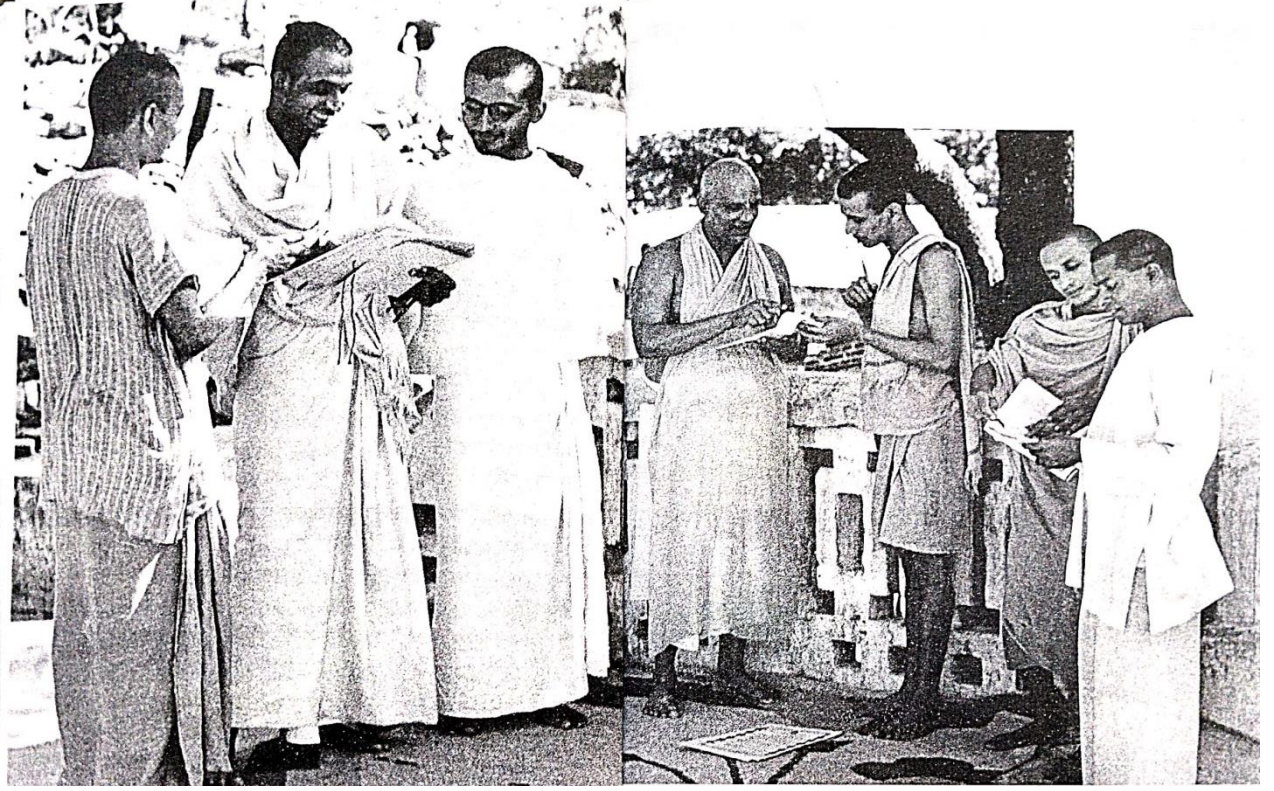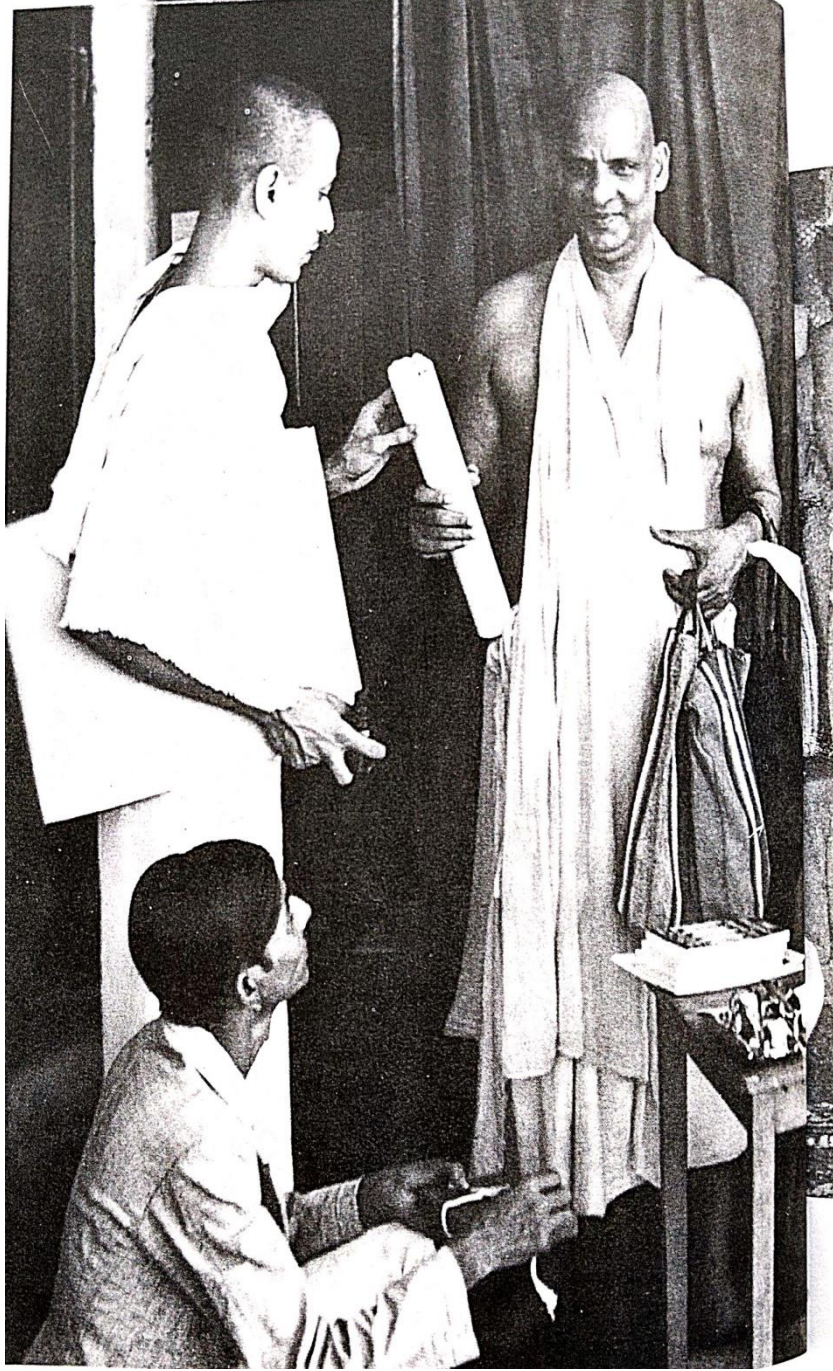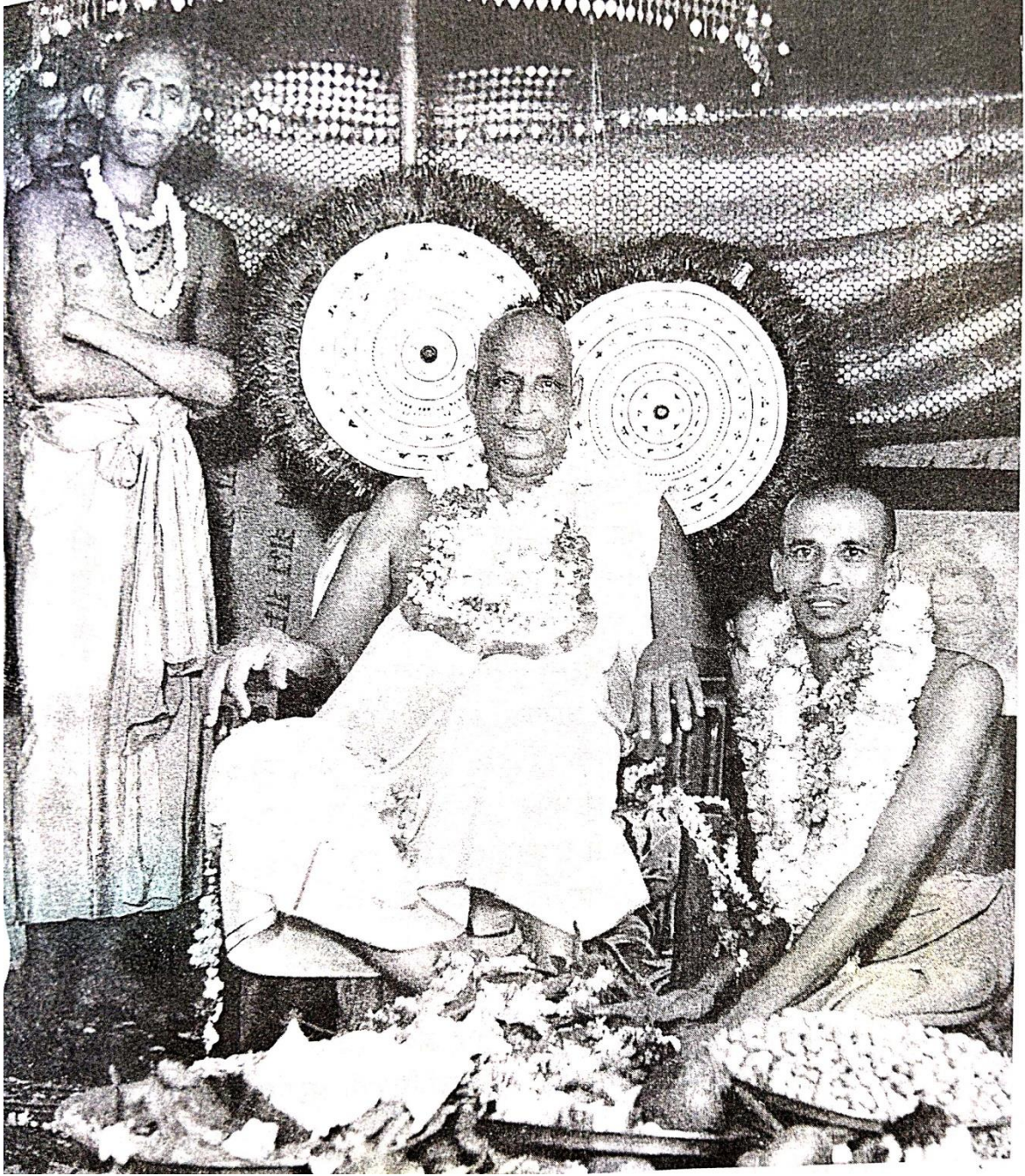
श्री गुरुदेव-चरणाश्रित

शिवानन्द आश्रम में प्रवेश के बाद श्रीधर राव ने शीघ्र ही एक प्रमुख साधक और महत्त्वपूर्ण प्रभावशाली व्यक्तित्व के रूप में ख्याति प्राप्त कर ली थी। वह आश्रम के केन्द्र बिन्दु हो गये थे। गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने उन पर आश्रम की सम्पूर्ण व्यवस्था का दायित्व सौंप दिया था जिसको निभाते हुए विभिन्न कार्य-विभागों में अनेकविध रूप से कुशलतापूर्वक उन्होंने सर्वोत्तम प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया था। सन् १९४९ में गुरुदेव ने उन्हें पवित्र संन्यासाश्रम में दीक्षित कर, स्वामी चिदानन्द सरस्वती नाम से विभूषित किया।

कई समय ऐसे आए, जब कुछ भक्त जन गुरुदेव से उनके आध्यात्मिक उत्तराधिकारी के विषय में जानकारी प्राप्त करना चाहते थे। यद्यपि उसका उत्तर भिन्न-भिन्न ढंग से दिया गया था तथापि भाव-आशय तो एक समान ही था। सन् १९४४-४५ की बात है, गुरुदेव के एक मारवाड़ी भक्त श्री काशीराम गुप्ता जी (श्री रामनिवास गुप्ता जी के पिताश्री) कलकत्ता से गुरुदेव के दर्शनार्थ आश्रम में आये हुए थे। गुरुदेव ने उन्हें अपने गंगा-तटस्थ कुटीर में बुलाया और आश्रम में उनकी सुख- सुविधा के बारे में पूछताछ कर जानकारी प्राप्त की। तभी एकाएक गुरुदेव ने उनकी ओर देखते हुए बताया, "ओ जी! मेरा उत्तराधिकारी आ चुका है।" आश्चर्य से गुप्ता जी ने पूछा, "कौन? उस समय ब्रह्मचारी श्रीधर राव, जो गंगा स्नानोपरान्त किनारे पर खड़े होकर तौलिए से अपना शरीर पोंछ रहे थे, ध्यानपूर्वक उधर देखकर, अंगुली से संकेत करते हुए गुप्ता जी को बताया, "वहाँ देखो, गंगा किनारे उस नवयुवक साधक को। यही है मेरा आध्यात्मिक उत्तराधिकारी।" अतएव गुरुदेव ने तब से ही, अर्थात् श्रीधर राव रूप में ही उन्हें अपना उत्तराधिकारी चयनित कर लिया था। प्रारम्भिक दिनों में ही एक बार इसी तरह अपने वृद्ध सज्जन भक्त मेजर जनरल ए० एन० शर्मा से गुरुदेव ने कहा था, "मेरा उत्तराधिकारी आ गया है।"

सन् १९६२-६३ में जब स्वामी जी आश्रम से बाहर अज्ञातवास में थे, उन्हीं दिनों संयोगवश, योग समाज-मद्रास के संस्थापक कवियोगी शुद्धानन्द भारती, जो गुरुदेव के सहपाठी, बालपन के सखा भी थे, आश्रम में पधारे। उन्होंने गुरुदेव से पूछा, "स्वामी जी! कृपया मुझे अपनी अनश्वर वसीयत के बारेचिदानन्द आत्मकथा

३१ बतलाइए; जो आप मानवजाति को अपनी पुस्तकों तथा भवनों के अतिरिक्त उत्तरदान करेंगे ? क्या यह दिव्य जीवन संघ है अथवा पुण्यशील संन्यासियों का समाज है, जिसे आपने प्रशिक्षित किया है?" ऐसा सुनकर कुछ समय तक गुरुदेव अन्तर्मुखी तथा मौन हो गए। तत्पश्चात् उन्होंने कहा, "निःसन्देह, स्वामी चिदानन्द ! वही मेरी जीवन्त आध्यात्मिक वसीयत हैं, जिसे मेरे उपरान्त दिव्य जीवन संघ का कार्य चलाने के लिए मैं अपने पीछे छोड़ रहा हूँ।" और फिर मानो ब्रह्माण्डीय दैवी योजना को अपने मन में पहले ही देख लिया हो, और आगे बोले, "वह आ रहे हैं, पहुँचने वाले हैं।"

एक अन्य अवसर पर गीता प्रेस के संस्थापक श्री जयदयाल गोयन्दका जी ने गुरुदेव से मिलने पर उनके आध्यात्मिक उत्तराधिकारी के विषय में पूछा था। प्रत्युत्तर की अपेक्षा गुरुदेव ने स्वामी चिदानन्द जी को तत्काल वहाँ आने का सन्देश भिजवाया। स्वामी जी ने वहाँ पहुँचते ही, दूर से ही गुरुदेव को श्रद्धापूर्वक तीन बार दण्डवत प्रणाम किये। तदुपरान्त, श्री गोयन्दका जी को भी साष्टांग प्रणाम किये। अन्य कुछ घटित नहीं हुआ, कुछ कहा भी नहीं गया। किन्तु उनके सहज शिष्टाचार ने गीता प्रेस के संस्थापक पूज्य गोयन्दका जी पर बहुत गहरा प्रभाव डाला। चिदानन्द जी की मात्र उपस्थिति तथा विनम्र दण्डवत ने उन्हें एक असाधारण भाव से पूरित कर दिया और मौन में ही उन्हें अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया।
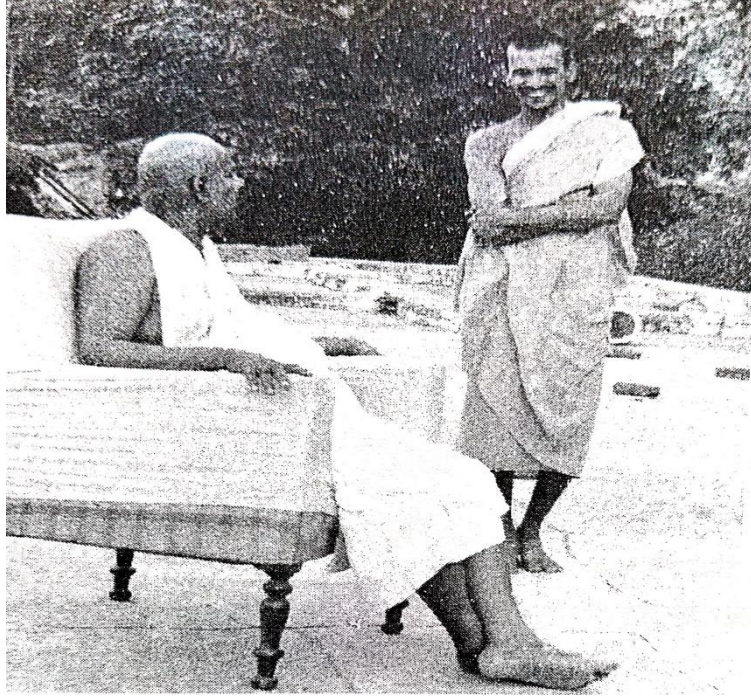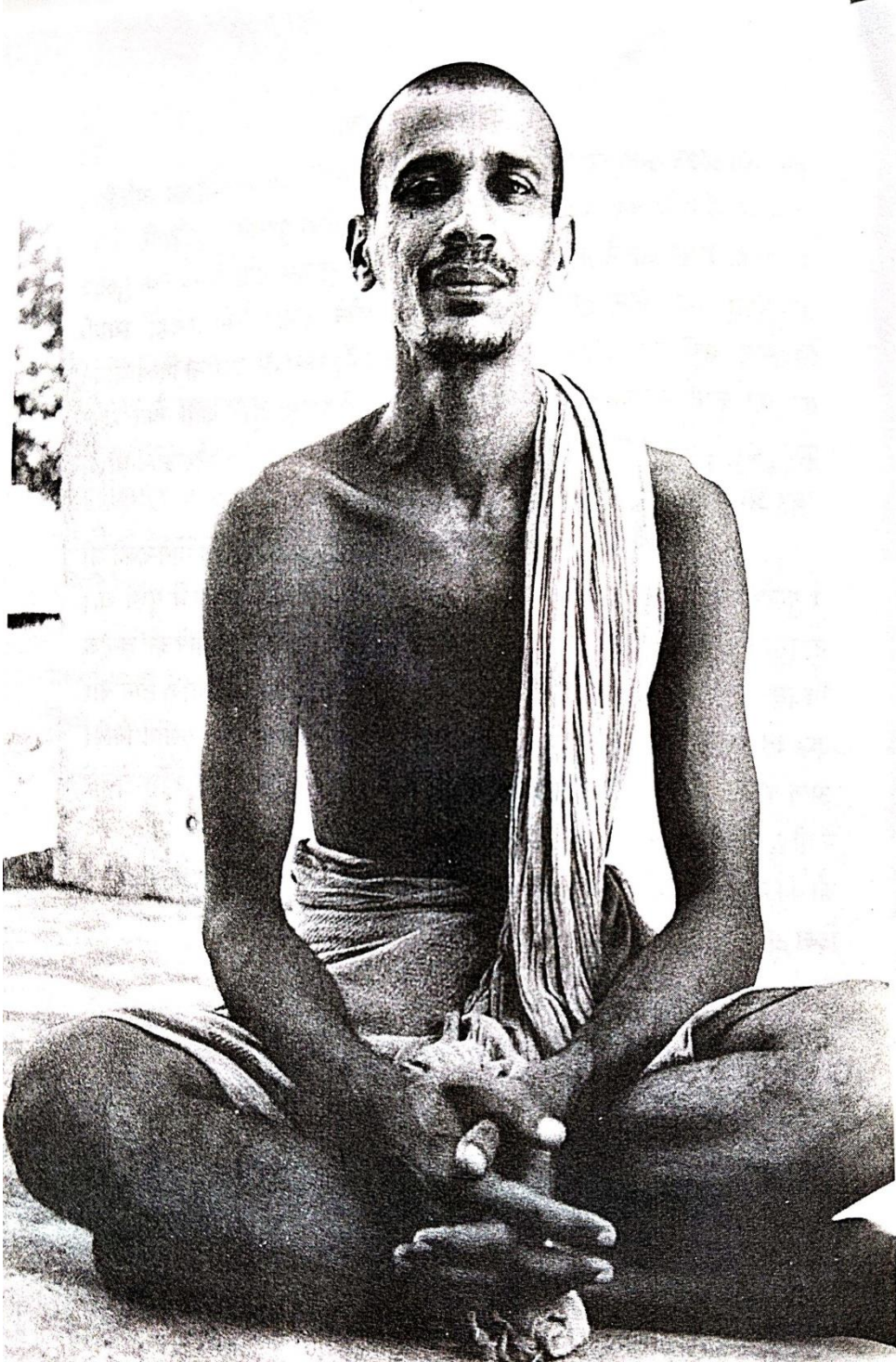
श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज का अपने ३९ वें जन्म-दिवस पर दिया गया प्रवचन

श्री गुरुदेव की सदेच्छानुसार यह जन्म-दिन मनाया गया, इसकी मुझे प्रसन्नता है। पहले तो मैंने श्री स्वामी जी से क्षमा याचना की थी, कि मुझे इसके लिए विवश न किया जाये, किन्तु इस उत्सव के मनाये जाने के कारण, हमने अभी-अभी समस्त धर्म-ग्रन्थों का सार तत्त्व सुना; उनके श्रीमुख से सभी युगों और समस्त वर्गों के सन्तों के ज्ञानोपदेशों का सत्त्व निःसृत होता, हमने श्रवण किया। हमें उपनिषदों का ज्ञान सरल भाषा में सुनने को मिला। कुरान, बाइबिल, गीता, पुराण, सभी धर्म-ग्रन्थों के अत्यन्त सरल, प्रभावशाली, रोमहर्षक, उत्साहवर्धक और प्रेरणास्पद जीवन्त शब्द,

प्रत्यक्ष गुरुदेव के श्रीमुख से हम सुन रहे थे। इस एक ही बात के लिए, जन्म- दिन का मनाया जाना सार्थक हो गया। । मैं कितना प्रसन्न हूँ, यह वर्णन नहीं किया जा सकता। न जाने पिछले कितने जन्मों के पुण्य-कर्मों के परिणामस्वरूप, हम इस पावन स्थली पर बैठे हुए हैं और जिस अनन्त आध्यात्मिकता, असीम दिव्यता की जीवन्त ज्वाला की गुरुदेव प्रतिमूर्ति हैं, उस अग्नि को आज वाणी के रूप में हम यहाँ श्रवण कर रहे हैं। अभी जो कुछ भी आपने सुना, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उन्होंने हममें दिव्य प्रकाश भर दिया है। प्रत्येक शब्द जीवन्त आध्यात्मिकता की धधकती अग्नि है। किन्तु गुरुदेव ने जैसे कहा, कल प्रातः हम सो कर उठेंगे, तो वही, वैसे ही पुराने व्यक्ति होंगे। परन्तु इसे निश्चित रूप से सुरक्षित रखने के लिए भगवान् ने स्वामी वेंकटेशानन्द जी को भेजा हुआ है। प्रत्येक शब्द अब लिपिबद्ध हो गया है और यह मुद्रित भी हो जायेगा। मेरी आप सबसे प्रार्थना है कि गुरुदेव के इस प्रवचन की मुद्रित प्रतिलिपि अपने पास सुरक्षित रखें। प्रतिदिन प्रातः उठते ही, तथा रात को सोने से पहले इसे एक बार पढ़ें। हमारे सम्पूर्ण जीवन के लिए एक आदर्श उदाहरण के रूप में और हमें, जीव से असीम सच्चिदानन्द आत्मा में परिणत करने के लिए, हमें उच्चतम दिव्यता तक समुन्नत करने के लिए यह एक प्रवचन ही पर्याप्त है।

श्री स्वामी कृष्णानन्द जी के जन्म-दिवस का उत्सव मनाने के एकदम साथ ही, इतनी शीघ्र अपना जन्म-दिवस न मनाने के लिए मैंने श्री गुरुदेव से प्रार्थना की थी कि इसे छोड़ दिया जाये। कुछ दिनों बाद उन्होंने कहा, "भले ही तुम्हारी इच्छा हो या न हो, मैं तो यह मनाने जा रहा हूँ।" तब उन्होंने मुझे एक अद्भुत नुस्खा दिया। यह मेरे लिए एक परीक्षा थी, जिसमें गुरुदेव की कृपा से मैं सफल हुआ। उन्होंने कहा, "तुम चिन्ता क्यों करते हो? उन्हें जन्म-दिन मनाने दो। तुम समझो कि यह किसी और का जन्म-दिवस है। अनुभव करो मैं अकर्ता, अभोक्ता हूँ। साक्षी बन जाओ।" यह आध्यात्मिक वटी उन्होंने मुझे दी। यही भाव मैंने आज प्रातः से बनाये रखा है। परन्तु अब तो मुझे पूरा निश्चय हो गया है कि यह किसी और का ही जन्म- दिवस है। जिस चिदानन्द नाम के व्यक्ति का आप सबने इतना अद्भुत विवरण दिया है, मैं भी उससे मिलना चाहता हूँ।

अपने शिष्यत्व की दीर्घावधि में "गुरु वाक्य वेद बाक्य" सूत्रानुसार स्वामी जी सतत अपनी सेवाएँ समर्पित करते रहे। अमेरिका के भक्तों के साग्रह अनुरोध पर अक्तूबर सन् १९५९ में योग तथा वेदान्त का सन्देश देने हेतु स्वामी जी को गुरुदेव ने वहाँ जाने का आदेश दिया। वहाँ पहुँचकर उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका, यूरोप और अफ्रीका के असंख्य जिज्ञासु श्रोताओं के हृदय पर उन्होंने जो गम्भीर आध्यात्मिक प्रभाव छोड़ा, वह अवर्णनीय है।

"२ वर्षों से भी अधिक लगातार विदेश के भीड़भाड़, कोलाहल और अशान्तिपूर्ण पर्यावरण में रहने तथा आध्यात्मिक वार्ताओं में समय व्यतीत करते रहने के पश्चात्, मैं यहाँ भारत में मौन तथा प्रशान्त वातावरण में रहने को लालायित था। यहाँ पहुँचने पर पचासों पत्र उत्तर की प्रतीक्षा में पड़े देखे। पत्र लिखने वालों की व्यग्रता का मैं अनुभव करता हूँ। परमात्मा उन सबको आशीर्वादित करें। केवल आपकी निष्ठा और प्रेमाग्रह (भगीरथ के समान) का सातत्य ही इस मौन-प्रेमी स्वामी को प्रत्युत्तर देकर पत्राचार के लिए विवश कर पाये हैं। आप धन्यवाद के पात्र हैं। इस समय विदेश से आये भक्तों के लगभग एक सौ पचास पत्र मेरे पास उत्तर के लिए रखे हैं और एक सप्ताह के अन्दर कार्यक्रम-हेतु गुजरात जाने के लिए भी मुझे अनुरोध किया जा रहा है। वहाँ जाना अवश्यम्भावी हो गया है। भगवान् ही जाने कि प्रत्युत्तर का कार्य कब और कैसे सम्भव हो पायेगा। आपके सभी पत्रों को बार-बार पढ़ रहा हूँ, ताकि अत्यावश्यक तथ्यों पर मैं प्रकाश डाल सकूँ।"

१९५९ स्वामीजी की प्रथम विदेश यात्रा

ॐ

" विदेश से आने पर यहाँ मेरा सम्पूर्ण व्यक्तित्व, मेरा अन्तर्मन आन्तरिक नीरवता, एकान्त-ध्यान हेतु किसी निर्जन स्थान के लिए आकुल-व्याकुल था। सन् १९५६ के पूर्व दिनों में भी ऐसी ही स्थिति थी परन्तु संस्था के, आनन्दकुटीर (आश्रम) के अनेकानेक कर्तव्य कर्मों की व्यस्तता के कारण यह उत्कट लालसा अपूर्ण रह गयी थी। जब मैं पश्चिमी देशों में था तभी मुझे ऐसा आभास होने लगा था कि भारत वापिस पहुँच कर इस आतुरता को रोक पाना अति कठिन होगा। इसलिए अन्तःप्रेरणा-अनुसार भारत लौटने पर सीधे आश्रम में गुरुदेव के श्री चरणों में पहुँच एकान्तवास के लिए उनकी अनुमति चाहने को प्रबल इच्छुक था, जो उन्होंने अनिच्छापूर्वक प्रदान कर दी थी। कारण कि परिव्राजक का क्लेशकर जीवन अपनाने की वे अनुमति नहीं देना चाहते थे; परन्तु मेरा अनुरोध इतना गम्भीर था कि उसे अस्वीकार भी नहीं करना चाहते थे।"
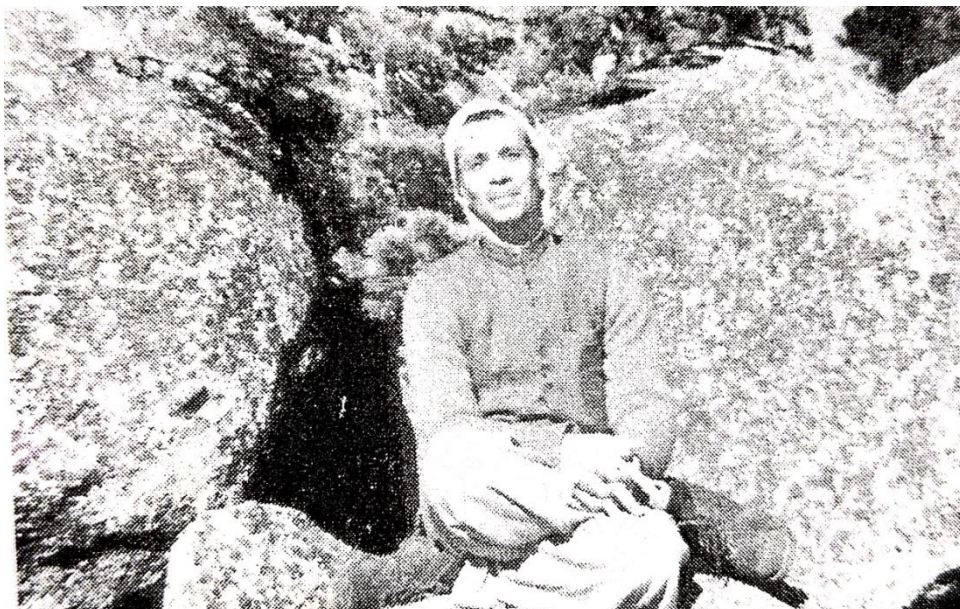
पूज्यपाद स्वामी जी महाराज दक्षिणी भारत के पावन तीर्थ स्थलों की यात्रा पर लगभग एक वर्ष परिव्राजक रूप से अज्ञात संचरण करते रहे। किन्तु श्री नागराजन जी (पूज्य स्वामी विमलानन्द जी) येन केन प्रकारेण उनका पता जानने में सफल हो ही गये। फिर पत्र-व्यवहार प्रारम्भ हो गया।

ॐ

गाणगापुर

श्री एस. नागराजन जी,
शिवानन्द आश्रम।
पूज्य अमर आत्मन् !
प्रिय नागराजन जी,

ॐ नमो नारायणाय।

इस समय जहाँ मेरा वास है, वह एक नीरव स्थान है; जो गाणगापुर (एक छोटा सा गाँव) से कुछ मील दूर है। यहाँ किसी प्रकार की भी कोई सुविधा नहीं है। दो नदियों के 'संगम' स्थल पर यह एकान्त स्थान है। पास में ही एक छोटा-सा मन्दिर तथा धर्मशाला, जिसमें टीन की छत वाला केवल एक बरामदा ही है। गाणगापुर से प्रतिदिन यहाँ कुछ यात्री आते हैं जो 'संगम' - स्नानोपरान्त वापिस चले जाते हैं। मैं यहाँ एक भिक्षु की भाँति ही रहता हूँ। चाय-दूध खरीदने के लिए अल्प धनराशि है मेरे पास। उडिपी के एक कन्नड़ सज्जन की एक छोटी-सी दुकान से ही चाय-दूध लेता हूँ। जब मेरे पास पैसे का अभाव होता है तो वह उधार दे देता है। एक मास पूर्व जब मैं यहाँ आया था, तब पंढरपुर का एक भक्त कुछ अनुष्ठान कर रहा था, वह मुझे मध्याह्न की भिक्षा में एक चपाती अथवा ज्वार की एक मोटी रोटी दे दिया करता था। दस दिन पूर्व वह यहाँ से चला गया है। तदुपरान्त, कुछ दिन थोड़ा भोजन मन्दिर से और कुछ दिन दुकानदार से लेकर निर्वाह किया। कभी एक या दो केले ही आहार में ले लेता हूँ। परन्तु सब पूर्णतया ठीक है। गुरुदेव की कृपा ही इस शरीर का भरण-पोषण तथा स्वास्थ्य की देख-रेख कर रही है। मैं मन्दिर के बरामदे में एक बोरी तथा तौलिए पर ही सोता हूँ। जैसा कि यह शहर से दूर चारों ओर से खुला स्थान है; सर्दी बहुत है। श्रीनगर के गोबिन्दराम कपूर द्वारा दी गयी काले रंग की शाल मेरे पास है।

गाणगापुर

दिनांकः ८ मई १९६३

श्री एस. नागराजन जी,
आनन्द कुटीर।
पूज्य आत्मन् !
प्रिय नागराजन जी,
ॐ नमो नारायणाय।
जय सतगुरु शिवानन्द देव !

इस पुण्य दिवस बुद्ध जयन्ती (वैशाख पूर्णिमा) के पावन अवसर पर ही बीस वर्ष पूर्व मैं ऋषिकेश पहुँचा था। उसी सान्ध्य बेला में गुरुदेव के प्रथम प्रत्यक्ष दर्शन का एवं उनके श्री चरणों में प्रणत हो, विनम्र प्रणाम करने का दुर्लभ सुअवसर पाकर मेरा जीवन पवित्रीकृत हो गया और मैं धन्य धन्य हो उठा। तब से ही गुरुदेव के अनेकानेक आशीर्वाद, अनन्त अपार प्रेम, दया-करुणापूर्ण कृपा-वर्षण होता रहा है, उसके लिए आज शिष्यत्व के बीस वर्षोंपरान्त उनके चरणारविन्द में साभार सादर श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। भगवान् का मैं अत्यन्त धन्यवादी हूँ। उन्हीं की दया-कृपा से मुझ जैसे अपात्र का जीवन गुरुदेव का दिव्य सान्निध्य- सत्संग प्राप्त कर आध्यात्मिक रूप से सुसम्पन्न हुआ।

लगभग एक वर्ष पूर्व सन् १९६२ में दक्षिणीय पवित्र तीर्थ स्थलों की यात्रा हेतु आश्रम से मैंने प्रस्थान किया था। गुरुदेव की कृपा के फलस्वरूप अनेक तीर्थो का दर्शन-भ्रमण कर चुका हूँ। बहुत कुछ उपलब्धि हुई, पर्याप्त सीखने को मिला तथा अन्तर्मुखी साधनामय जीवन व्यतीत करने का प्रयास भी रहा। अधिकतया मौन ही रहता था। गुरुदेव ने इस शरीर की सम्पूर्ण देखभाल की है। मैं नदी तट पर नीरव एकान्त स्थान पर हूँ। अब मेरे मन में आश्रम पहुँचने की अन्तःप्रेरणा प्रबल हो उठी है। मैं गंगा मैया के दर्शनार्थ लालायित हूँ। गुरुदेव को
चिदानन्द आत्मकथा

३९ तो मैंने अपने हृदय-सिंहासन पर विराजित किया हुआ है, परन्तु गंगा जी के दर्शन तो वहाँ पहुँच कर ही होंगे। यह ईश्वर की इच्छा ही प्रतीत होती है कि पुनः उत्तर दिशा की ओर गमन किया जाए। अतएव मैं किसी समय भी वहाँ पहुँच सकता हूँ।

तारीख और समय आदि के विषय में मुझे कुछ ज्ञात नहीं। अनिश्चित है। परमात्मा ही हमारे आन्तरिक नियन्ता एवं निर्देशक हैं। वही होगा जैसा वे चाहते हैं। वे मेरे संचालक हैं, जब चाहेंगे मुझे यहाँ से ले जायेंगे। इसे दैवी योजना, ईश्वरेच्छा कहेंगे या गुरुदेव का सत्संकल्प; (इस सेवक के लिए दोनों समान ही हैं) कोई रहस्यमयी शक्ति तो अवश्य है, जिसके अनुसार सब संचालित होता रहता है। यदि कोई निरभिमानी होकर पूर्ण समर्पण करता है तो यही शक्ति पूर्णरूपेण उसका संचालन करती है। गंगा मैया की तथा गुरुदेव के श्री चरणों की स्फुरणा भी जब मेरे मस्तिष्क में होती है तो मेरा हृदय हर्षातिरेक से पुलकित हो उठता है। वे मुझ जैसे मूढ़ को भी आशीर्वादित करते रहते हैं। आप सबके दर्शन की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा में -

चिदानन्द हूँ ! ॐ

चिदानन्द हूँ ॥
ॐ

श्री गुरुदेव की महासमाधि के उपरान्त

"समुद्र-तट से लगभग पांच-छः हजार फीट की ऊँचाई पर शीतल और शान्त स्थान मसूरी पहुँचने के लिए मैं सीधे देहरादून की ओर शीघ्रतापूर्वक चल पड़ा। वहाँ रहते हुए अकस्मात् चौथे ही दिन गुरुदेव के श्री चरण-दर्शनों की अप्रतिरोध्य कामना एकाएक मुझे आश्रम में खींच लाई। आश्रम में कुछ समय रुक कर गुरुदेव के दर्शन-मिलनोपरान्त मेरे लौटने के समय, मुझे गुरुदेव की गम्भीर रुग्णावस्था के विषय में सूचित किया गया। मैंने अपना प्रस्थान स्थगित कर दिया तथा इस आशा से मैं रुक गया कि गुरुदेव के स्वास्थ्य लाभ होने पर फिर विदा लेकर एकान्तवास के लिए चला जाऊँगा। जानते हैं फिर क्या हुआ? जब डॉक्टर पुनर्सुधार की बात सोच रहे थे, स्वास्थ्य लाभ होता देख रहे थे, तो २४ घंटे के अन्दर ही हालत बिगड़ती दिखाई पड़ी, स्थिति में परिवर्तन आ गया, और सदा-सदा के लिए अपनी आँखें मूँद कर गुरुदेव परम तत्त्व में विलीन हो गये; और मेरी नियति ने मुझे इस विषम अकल्पनीय परिस्थिति में पहुँचा दिया।

तत्काल ही आश्रम के महत्त्वपूर्ण कार्यों की व्यवस्था का दायित्व मेरे कन्धों पर आ गया। कार्य-बाहुल्य की व्यस्तता इतनी अधिक बढ़ गयी कि आश्रम से सायं भ्रमण हेतु भी जाना असम्भव सा हो गया। सर्वोपरि महत्त्व की बात तो यह थी कि संस्था का न्यासी मंडल दृढ़ निश्चयी था कि संस्था का अध्यक्ष पद मुझे ही सम्भालना होगा। और हुआ भी वही। प्रन्यासियों की एक बैठक हुई जिसमें मुझे ही परमाध्यक्ष मनोनीत किया गया। उन सबकी प्रेम भरी निष्ठा के सामने विवशतावश मुझे सब स्वीकार करना पड़ा। सम्पूर्ण स्थिति को समझाना असम्भव प्रतीत हो रहा है। विश्लेषण नहीं कर पा रहा। आश्रम की व्यवस्था संचालन का कार्य सहज- सुचारु रूप से होते रहने का प्रयास कर रहा हूँ। बहुत सी आवश्यक बातें हैं जिन पर मुझे ध्यान केन्द्रित करना है। संस्था के कानूनी मामले, वैधानिक नियम-नीति, अभ्यागतों का मार्ग-दर्शन, अन्तेवासियों का पथ-प्रदर्शन, चहुँ ओर से एकत्रित पत्र। ऐसी स्थिति में पत्राचार के लिए तो समय निकाल पाना सम्भव ही नहीं।"

"व्यवहारतः, पिछला सम्पूर्ण वर्ष एक प्रकार से अज्ञात संचार में ही व्यतीत हो गया। तत्पश्चात् अन्तःप्रेरणा होने पर मौन-ध्यान प्रशान्ति के लिए मेरी अभिलाषा-जिज्ञासा एक अनजानी दिशा की ओर मुझे ले गयी। एकान्त स्थान- वास हेतु ऊँचाई पर पहुँच गया था। किन्तु दैवी योजना कुछ और ही थी जो मुझे परम श्रद्धेय गुरुदेव के श्री चरणों में वापिस ले आयी। विदेश से लौटने पर मुझे अप्रत्याशित परिस्थितियों का सामना करते रहना पड़ा जिसकी मैंने कभी कल्पना भी न की थी। स्थिति में पूर्णतया अनिश्चयपूर्ण परिवर्तन आ गया। एक के बाद एक अनिश्चित घटना-चक्र में पड़ते-पड़ते अति व्यस्त होता गया। ईश्वरेच्छा कहें या गुरुदेव का संकल्प, कुछ भी कह सकते हैं; ऐसी-ऐसी परिस्थितियाँ सामने आयीं जो मेरे लिए पूर्णतः अकल्पनीय थीं; जिन्हें समझ पाने में असमर्थ हूँ। न्यासी मंडल द्वारा परमाध्यक्ष पद जो सौंपा गया, उसका योग्यतापूर्वक निर्वहन कर सकूँ, इसके लिए आपके शुभाशीर्वाद, शुभाशीषं तथा आशीर्वचन की अपेक्षा है, तभी आप पूज्यजनों के हार्दिक अभिनन्दन सफलीभूत होंगे। गुरुदेव से मेरी एकमात्र यही प्रार्थना-याचना है कि विशुद्ध भाव से सेवा करने, कर्तव्यनिष्ठा से कर्म करने तथा समुचित रीति से जीवन-यापन करने में मुझे समर्थ करें। वे इस सेवक को विनम्रता, निःस्वार्थपरता तथा पूर्ण समर्पण की सामर्थ्य प्रदान करने से वंचित न रखें।"

परमाध्यक्षीय प्रबोधन
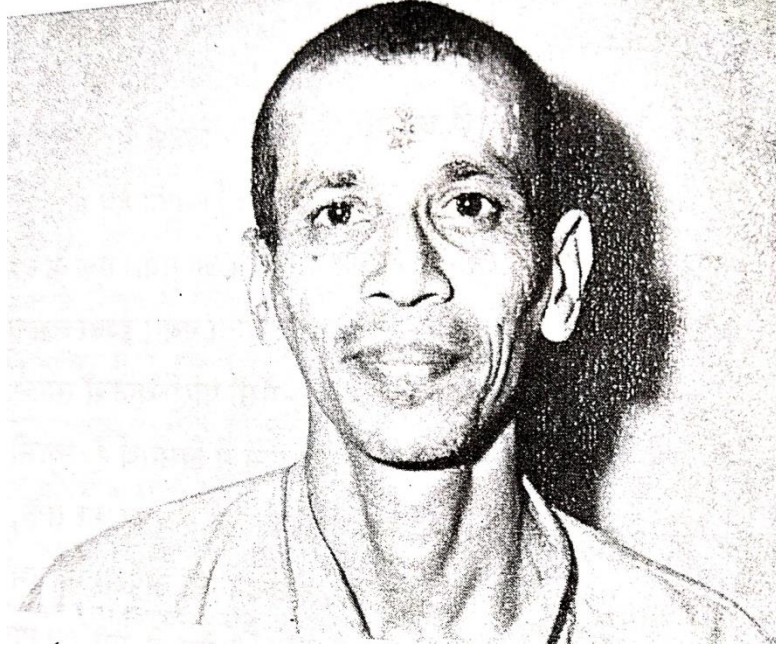
(२३-८-१९६३ को मुख्यालय आश्रम के अन्तेवासी साधकों को दिये गये प्रथम प्रबोधन का सारांश)

सौभाग्यशाली अमर आत्मन्!

गुरुदेव-स्वरूप दिव्य आत्मन्!

आप सबमें अन्तर्हित दिव्यता को मेरे प्रणाम। आज का श्री गणेश- पूजा-दिवस, पावन विनायक चतुर्थी दिवस, विजयदशमी की भाँति ही मंगल कार्यों का शुभारम्भ दिवस माना जाता है। अब हमारे बीच गुरुदेव सशरीर उपस्थित नहीं हैं। उनका पुण्य उत्तरदायित्व कर्तव्य कर्म, हम सबको सम्मिलित रूप से योग्यतापूर्वक सम्पन्न करना है, जो उनके समय हम पर नहीं था, उसी का निर्वहन करने से सम्बन्धित अपने आन्तरिक भाव-विचार आपके समक्ष प्रस्तुत करना चाहता हूँ।
चिदानन्द आत्मकथा

४३ इस आश्रम में हम सब लोग व्यापक रूप से देश-विदेश के विभिन्न भागों से आए हुए हैं। यद्यपि सबकी आस्थाएँ, भाषाएँ, विचारधाराएँ, रीति- रिवाज इत्यादि अपने-अपने देश के अनुसार भिन्न-भिन्न हैं, तथापि पूर्व जन्म- कृत कर्मों के फलस्वरूप नियति द्वारा यहाँ समन्वित रूप से निवास करते हुए एकसूत्र में बँधे हुए हैं। सबके अस्तित्व गुरुदेव से ही संयुक्त हैं। गुरुदेव ही हम सबके मूल केन्द्र हैं, हमारे जीवनाधार हैं।

हम सबके पारस्परिक सहयोग के परिणामस्वरूप ही गुरुदेव का महान् मिशन, 'दिव्य जीवन संघ,' समृद्धि तथा उत्कर्ष को प्राप्त हुआ है, जिसके द्वारा पिछले कई वर्षों में असंख्यासंख्य साधक, भक्तजन, गुरुदेव के दिव्योपदेशों से लाभान्वित हुए हैं। अपने सत्संकल्प, कठिन तपस्या, तीव्र त्याग-वैराग्य द्वारा, तथा इससे भी बढ़कर अपने अविरल, अजस्र, अथक प्रयास द्वारा ही गुरुदेव ने महान् उपलब्धि प्राप्त की; जो अविस्मरणीय है। हम सबकी अपेक्षा जिन्होंने अकेले ही कठोर परिश्रम द्वारा निष्ठापूर्वक, कर्तव्य कर्म सम्पन्न किए, वे केवल गुरुदेव ही थे। उन्हीं

के संकेन्द्रित प्रयास का उत्तमोत्तम परिणाम था, जो उन्होंने प्राप्त किया, अन्यथा सब असम्भव ही था। जिस विशेष क्षण में जो कार्य वे प्रारम्भ करते, उसे पूरी लगन से, मनोयोगपूर्वक सम्पूर्ण करते और उसे सर्वोत्तम रूप दे देते। अपनी कार्य-प्रणाली के विषय में, बहुधा बताया करते थे कि वे अपने मस्तिष्क के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनेक कोष्ठों में से विषय सम्बन्धित एक कोष्ठ को बड़ी तत्परता से खोल लेते, उसी एक विशेष कार्य को पूर्ण एकाग्रता से करते; इसके सम्पूर्ण हो जाने पर वह कोष्ठ बन्द कर देते। फिर दूसरा खोलते, अवधानपूर्वक उस कार्य को सम्पन्न करते; फिर वही क्रम चलता रहता। यह आश्रम, विशाल संस्था, उन्हीं के अनेक वर्षों के अनवरत, अविराम, सतत प्रयासों, अनन्य निष्ठा के फलस्वरूप ही निरन्तर प्रगतिशील रही।

इस आश्रम के दो पहलू हैं, जो परस्पर अनुप्राणित हैं। प्रथमतः हम सब लोग यहाँ साधक रूप में आध्यात्मिक प्रगति हेतु आश्रम के सानुकूल सात्त्विक वातावरण का लाभ उठाते हुए साधना-रत रहते हैं। दूसरा पहलू है-एक विशाल इकाई के रूप में दिव्य जीवन संघ, शिवानन्द आश्रम में हम निवास करते हैं। इस दृष्टि से हम सब गुरुदेव के सौभाग्यशाली सेवक हैं। इस प्रकार हमारे व्यक्तित्व में ये दोनों पक्ष अन्योन्याश्रित हैं। इस संस्था के माध्यम से गुरुदेव ने न केवल भारत में अपितु विदेशों में भी अनगिनत मानव जीवन में शान्ति, प्रेरणा, सान्त्वना प्रदान कर उनका उद्धार किया। आश्रम में ही स्थायी रूप से विराजित रहते हुए वे सब स्थानों में, सूक्ष्म रूप द्वारा सक्रियतापूर्वक कार्य करते रहे। उस समय भी आश्रम विशाल स्तर पर गुरुदेव का ही अभिन्न रूप माना जाता था, और अब भी गुरुदेव के अन्तर्धान होने पर, उनका ही साकार रूप है।

बहुसंख्यक भक्त-साधकों के लिए गुरुदेव का सत्साहित्य उन्हीं का प्रतिरूप रहा। उनके प्रेरणाप्रद सदुपदेश अप्रत्यक्ष रूप में गुरुदेव स्वयं ही थे। गुरुदेव के इस विस्तृत-विशाल स्वरूप का अनुभव समग्र विश्व ने किया। उनकी आध्यात्मिक शिक्षाओं ने साधकों के अन्तः स्पर्श द्वारा उनके आन्तरिक जीवन को परिवर्तित कर सम्पूर्ण व्यक्तित्व को दिव्य बनाने का नवीन दृष्टिकोण दिया।

हमारे बीच तो गुरुदेव प्रेरणास्रोत के रूप में प्रत्यक्ष विद्यमान रहे। उनकी समुपस्थिति में हमें उनका दिव्य सत्संग-लाभ प्राप्त हुआ, अब तो वह अतीत का विषय बनकर रह गया। यह वास्तविकता है। केवल हमारे लिए ही नहीं, बहुत से साधक-अनुयायी जो सत्संग लाभ के लिए यहाँ आया करते थे, उन्हें भी अब गुरुदेव के सत्संग का अभाव खटकेगा। निःसन्देह गुरुदेव की अनुपम कृतियों, पुस्तकों, परिपत्रों, पत्रिकाओं के रूप में उनकी शिक्षाओं-निर्देशों द्वारा उनका सत्संग मिल जायेगा। परन्तु साधक-जिज्ञासुओं के लिए इतना ही पर्याप्त न होगा और न ही इससे वे सन्तुष्ट हो पायेंगे। परिणामतः प्रतिनिधि-रूप में गुरुदेव के शिष्यों अर्थात् हम सबसे उन्हें कुछ अपेक्षा रहेगी। अतः इस कर्तव्य-धर्म का निर्वहन करने के योग्य हमें बनना होगा, गुरुदेव के ज्ञान को विकीर्ण करने हेतु हमें माध्यम बनना होगा।

श्री गुरुदेव के शिष्यों अर्थात् हमसे ही 'शिवानन्द आश्रम' की बास्तविकता है न कि मात्र बाहरी ईंट-पत्थरों से निर्मित इमारतों से। वस्तुतः हम सबका प्रेमपूर्ण सौहार्द-भाव शिवानन्द आश्रम की पहचान है। हम शिष्यगण ही "शिवानन्द आश्रम" की आत्मा हैं। गुरुदेव के समय साधक-जिज्ञासुओं के आध्यात्मिक मार्गदर्शन का दायित्व उन्हीं के कन्धों पर था। इस विषय में उस समय इस दायित्व को गम्भीर रूप से हमने कभी महसूस नहीं किया था। हम बहुधा सोच लेते - "गुरुदेव तो यहाँ हैं, ये ही सबकी देख-रेख करते हैं। मार्गदर्शन का कार्य कैसे भी ये सम्भाल लेते हैं।" लेकिन अब अकस्मात् यह सम्पूर्ण उत्तरदायित्व हम सब पर ही आ गया है। जो कार्य उस समय गुरुदेव अकेले ही सम्पन्न कर लेते थे, अब वही हम सबको मिलकर, एक होकर के करना है। अपने अपने कर्तव्य कर्मों को हमें निभाना होगा। जिनसे हम सब शारीरिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक रूप से अपने व्यक्तित्व के विकास में लाभान्वित हुए, उन गुरुदेव के हम ऋणी हैं। उन्हीं का उत्तरदायित्व हम सब पर है; हम में से प्रत्येक को व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से इसका निर्वहन करते हुए अपना-अपना ऋण- शोधन करना है। गुरुदेव के प्रति आदर्श शिष्यत्व का निष्ठापूर्वक

पालन करते हुए, सतत गुरु-सेवा को धारा प्रवाह देकर निरन्तर कृतज्ञता ज्ञापन करते रहना होगा। अतः हमारी विचारधारा केवल गुरुदेव की ओर ही अभिमुख रहे। श्रद्धापूरित हृदय से याचना-प्रार्थना करें कि हम इस नये उत्तरदायित्व को निभाने में सदा सर्वदा सफलता-पथ पर आरूढ़ रहें।

श्री गुरुदेव हमें आशीर्वादित करें आध्यात्मिक प्रचार-प्रसार कार्य के लिए और साथ ही हमारा जीवन उनके द्वारा निर्देशित पथानुसार ही चलता रहे, ताकि हम अत्यन्त प्रभावशाली आदर्श दिव्य जीवन-यापन कर सकें, तभी हम मिलकर एक दूसरे के प्रेरणा-स्रोत एवं शक्ति-स्रोत बन पायेंगे।

यहाँ आपके सम्मुख विचार प्रस्तुत करने वाला मैं कोई देव पुरुष नहीं हूँ, मैं भी आप ही की तरह एक मानव ही हूँ। आश्रम में हम सब एक आध्यात्मिक संयुक्त परिवार के रूप में निवास करते हैं। गुरुदेव के तिरोधान से हमारी आन्तरिक निकटतम एकता में कोई अन्तर नहीं आना चाहिए बल्कि वह पहले से भी अधिक सुदृढ़ होनी चाहिए; यह अत्यावश्यक है। पहले गुरुदेव ने ही हम सबको एकता के सूत्र में बाँधा हुआ था, लेकिन अब हमें स्वयं आन्तरिक तथा बाह्य अवरोधों की परवाह न करते हुए एकता स्थापित करने का प्रयास करना होगा। यह एकत्व गुरुदेव के प्रति हमारे निश्चल प्रेम का, अटूट निष्ठा का, गुरु-भक्ति का प्रतीक होते हुए आभार प्रकटीकरण का भी एक रूप होगा। गुरुदेव के आध्यात्मिक मिशन के प्रति सेवा, भक्ति, ज्ञान-प्रसार के महान् लक्ष्य का पुनीत कार्य सदैव निरन्तर प्रगति पथ की ओर अग्रसरित करना होगा।

श्री गुरुदेव कहते थे, "अतीत को विस्मृत करें। क्षमा करें, और भूल जायें।" पिछले बीस वर्षों में, अपने जीवन में अगर मुझसे मन-वचन-कर्म द्वारा आप सबमें से किसी एक को भी कोई कष्ट पहुँचा हो, तो उसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ। मेरा सदैव सबको हित पहुँचाने का प्रयास रहा। किसी को कष्ट पहुँचाने का आशय कभी न था। गुरुदेव का व्यक्तित्व असाधारण था। वे कोई सामान्य व्यक्ति तो नहीं थे। अतः उन्होंने हम सब पर जो अपनी अमिट छाप छोड़ी है, वह कोई सामान्य नहीं है। गुरुदेव के दिव्य सम्पर्क में रहने का हम सबको अपूर्व सौभाग्य मिला। हम में से प्रत्येक साधक-जिज्ञासु का उन्होंने विशेष ख्याल रखा। हमें उनके दिव्य सम्पर्क का विशेषाधिकार प्राप्त रहा। उन्हीं के दिव्य निर्देशानुसार हमारे व्यक्तित्व निर्मित हुए। हम सबके भीतर द्विविध प्रकृति है। एक हमारा अपना जन्मजात स्वभाव, जैसे कि हम हैं। दूसरा हमारे अन्दर वह अंश जो गुरुदेव द्वारा निर्देशित तथा निर्मित है और इसी रूप में वे स्वयं विद्यमान हैं, उनकी ही समुपस्थिति है। गुरुदेव हमारे अन्तस में सदा सर्वदा विराजित हैं। हम उन्हें सतत प्रतिपल याद रखें; एक क्षण भी भूलें नहीं। उनके उच्चादशों के प्रति सत्यनिष्ठ रहें।

श्री गणेश पूजा के इस मांगलिक दिवस, विनायक चतुर्थी पर नये दायित्व को संवहन करने के आरम्भ से पूर्व, मैं आप सबसे क्षमा चाहता हूँ। अपने जीवन में अगर मैंने कभी किसी को कोई ठेस पहुँचाई हो, अप्रसन्न किया हो, तो मैं क्षमा प्रार्थी हूँ। इस समय तो गुरुदेव की संस्था के महत् कार्य को प्रगतिशील बनाने हेतु मैं अत्यन्त उत्सुक एवं उत्कण्ठित हूँ। अब तो हम सबके लिए यही महान् कर्तव्य-कर्म है, सर्वोपरि कार्य है- इसी को हमें प्राथमिकता देनी होगी। मैं एक संन्यासी हूँ। आप में से अन्य भी कई संन्यासी हैं। हमें आत्मनिष्ठ बनना है। अपने तन-मन या जगत् पर ही केवल हमारा ध्यान केन्द्रित न रहे; हमारी पूर्ण निष्ठा अपनी आत्मा पर ही हो। हम आत्म-स्वरूप में सदा संस्थित रहें। एक साधु-संन्यासी को बाह्य क्रियाओं से निर्लिप्त रहकर परम सत्ता के प्रति ही पूर्ण श्रद्धा रखनी है।

परन्तु, गुरुदेव की आध्यात्मिक सन्तान होने के नाते उनके आध्यात्मिक ज्ञान-प्रचार-प्रसार का दायित्व जो हमें सौंपा गया है, उसको सर्वाधिक प्राथमिक महत्त्व देना है। आदि गुरु शंकराचार्य के इस श्लोक में यह स्पष्टतः प्रकटित है-

भावाद्वैतं सदा कुर्यात् क्रियाद्वैतं न कर्हिचित्।
अद्वैतं त्रिषु लोकेषु नाद्वैतं गुरुणा सह ।। (तत्त्वोपदेशः - ८७)

"सिद्धान्त में, विचारों में सदैव अद्वैतवादी बनें, लेकिन व्यवहार में, क्रियाओं में नहीं। तीनों लोकों को आप अद्वैत दृष्टिकोण से देखें, लेकिन अपने गुरु के प्रति द्वैत का ही सम्बन्ध रखें।" अतएव गुरु सेवा ही हमारा सर्वोपरि महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है।

आज के सन्दर्भ में हम सब नवीन दृष्टिकोण से आदर्श जीवन-यापन का नव शुभारम्भ करें। अपने कर्म कौशल से दिन-प्रतिदिन प्रगति पथ पर अग्रसर हों। निरन्तर उत्थान की ओर बढ़ते रहें। निकट भविष्य भी प्रकाशमय उज्ज्वल हो। गणेश भगवान् 'विघ्न-विनायक' तथा 'सिद्धिदायक' हैं। हम उनका पूजन करते हुए, प्रार्थना-याचना करें कि हमारे उद्देश्य की पूर्ति हेतु समस्त विघ्न- बाधाओं को दूर कर प्रत्येक पग पर हमें सफलता-सिद्धि प्रदान करें। एक साधक के जीवन में तो गुरु-कृपा ही प्रमुख है। गुरु-कृपा से ही समस्त विघ्न-बाधाओं की निवृत्ति तथा सिद्धि-साफल्य प्राप्त होता है। इसीलिए हम गणेश जी से गुरु- कृपा-वर्षण के लिए प्रार्थना करते हैं। ईश्वर करें, गुरुदेव का अनुग्रह, सहायता रूप में सदैव हमारा पथ-प्रदर्शन करता रहे।

अब मैं भी अपने विचारों, कथनों एवं क्रियाओं के प्रति सदैव सजग और सतर्क रहूँगा, कि वे सदा संस्था के कल्याणार्थ ही हों। आज की मेरी अभिव्यक्ति, मेरी सोच-समझ, विचार शैली सप्ताह पूर्व जैसी नहीं है। अब उसे नया रूप मिला है। इस मनोभाव को बनाए रखने के लिए सावधान रहने में भगवान् मेरी मदद करें।

मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि गुरुदेव के महत् कार्य को सम्पन्न करने हेतु हमारा पारस्परिक सौहार्द-भाव रहे। आप में से हर एक का प्रेम और भावपूर्ण सहयोग मिलता रहे। यही मेरी मनोकामना है। आपके प्रीतिपूर्ण आग्रह से, मुझे परमाध्यक्ष पद का उत्तरदायित्व सौंपा गया; गुरु-इच्छा के समक्ष, अपने को समर्पित करते हुए इसे स्वीकार कर लिया गया है। अब आप सबका भी तो सहयोग अपेक्षित है, लोककल्याणार्थ इस कर्तव्य-धर्म को निर्विघ्न जारी रखने हेतु। गुरु-भक्ति तथा विश्वप्रेम के इस महत् कार्य को सुसम्पन्न करने में हम सबका भ्रातृ-भाव अनिवार्य है।

श्री गुरुदेव की संस्था-सेवा का पुनीत दायित्व हम पर आ जाने से अब अपने व्यक्तिगत या निजी जीवन का कोई अर्थ नहीं रहा। यह गुरुदेव की सेवा के प्रति पूर्ण समर्पित, वचनबद्ध हो गया है। हम सबके लिए 'दिव्य जीवन संघ' संस्था गुरुदेव का ही अभिन्न रूप है।

लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु
असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा अमृतं गमय ।

गणेश पूजा के इस पुनीत दिवस पर यह प्रार्थना प्रस्तुत है। हमारी आन्तरिक जीवन-शैली पूर्ण रूप से 'असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय" के अनुसार हो। हम असत् से सत् की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमरत्व की ओर बढ़ें; और बाह्य जीवन में "लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु "समग्र विश्व सुखी रहे;" ऐसा हमारा मूलमन्त्र होना चाहिए। हम सबका जीवन गुरुदेव के गौरव की वृद्धि के लिए ही हो। सर्वकल्याणार्थ हम सम्मिलित रूप से कार्य में जुट जायें। सेवा क्षेत्र में "और भी उत्तम या श्रेष्ठ कार्य करें; आगे बढ़कर रहें" - यही हमारा दृढ़ संकल्प, हमारा आदर्श वाक्य होना चाहिए।

धैर्यपूर्वक विचारों के श्रवण हेतु आप सबको हार्दिक धन्यवाद। श्री गणेश-पूजन की पूर्णाहुति से पूर्व हम सब कुछ क्षण मौन ध्यान करें।

ॐ तत्सत् ब्रह्मार्पणमस्तु !

पत्र एवं पत्रोत्तर अंश (पश्चिम की यात्रा-अवधि में)

(श्री गुरुदेव को पत्र)

न्यूयॉर्क
शनिवार, २१ नवम्बर १९५९

आराधनीय सद्‌गुरुदेव के श्री चरणों में आपके सेवक के श्रद्धापूरित प्रणिपात। अनेकानेक सादर साष्टांग दण्डवत ।
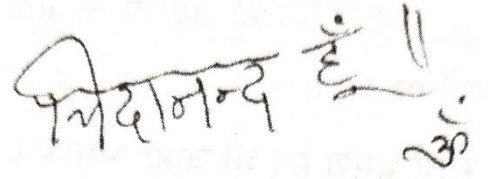
ॐ नमो नारायणाय।

श्रद्धेय श्री स्वामी जी महाराज के मंगलमय शुभाशीर्वाद से यहाँ पहुँचने के पूर्व पन्द्रह दिन की यूरोप यात्रा सकुशल रही। मेरा स्वास्थ्य ठीक है। श्री विष्णु स्वामी जी सहृदयता और सदयतापूर्वक मेरी सुख-सुविधा की पूर्णतया देख-रेख कर रहे हैं। शीत ऋतु के प्रारम्भ हो जाने से सर्दी यहाँ अच्छी खासी है, परन्तु सहनीय है।

अब तक मेरे मन में यहाँ के अपने कर्तव्यकर्मों की योजना सुस्पष्ट नहीं हो पायी है। गुरुदेव के चरणारविन्द में मेरी विनम्र प्रार्थना है कि सदा सर्वदा मेरे अंग-संग रहते हुए यहाँ के आकांक्षियों की आध्यात्मिक सेवार्थ मेरा पथ-प्रदर्शन करते रहें। इस भूमि में निवसित आपकी सन्तान की सेवा-पूजा निवेदित करने हेतु मैं अपने को योग्य सिद्ध कर सकूँ। कुछ अनुरोध लिखकर एक अलग सूची तैयार की है। गुरुदेव से सानुरोध प्रार्थना है कि वे आवश्यकतानुसार इस सेवक को यथासम्भव, यथा समय अपने अनुदेश देते हुए कृतार्थ करें।

श्री चरणों में सेवक

स्वामी चिदानन्द ॐ

चिदानन्द हूँ ॥ ॐ
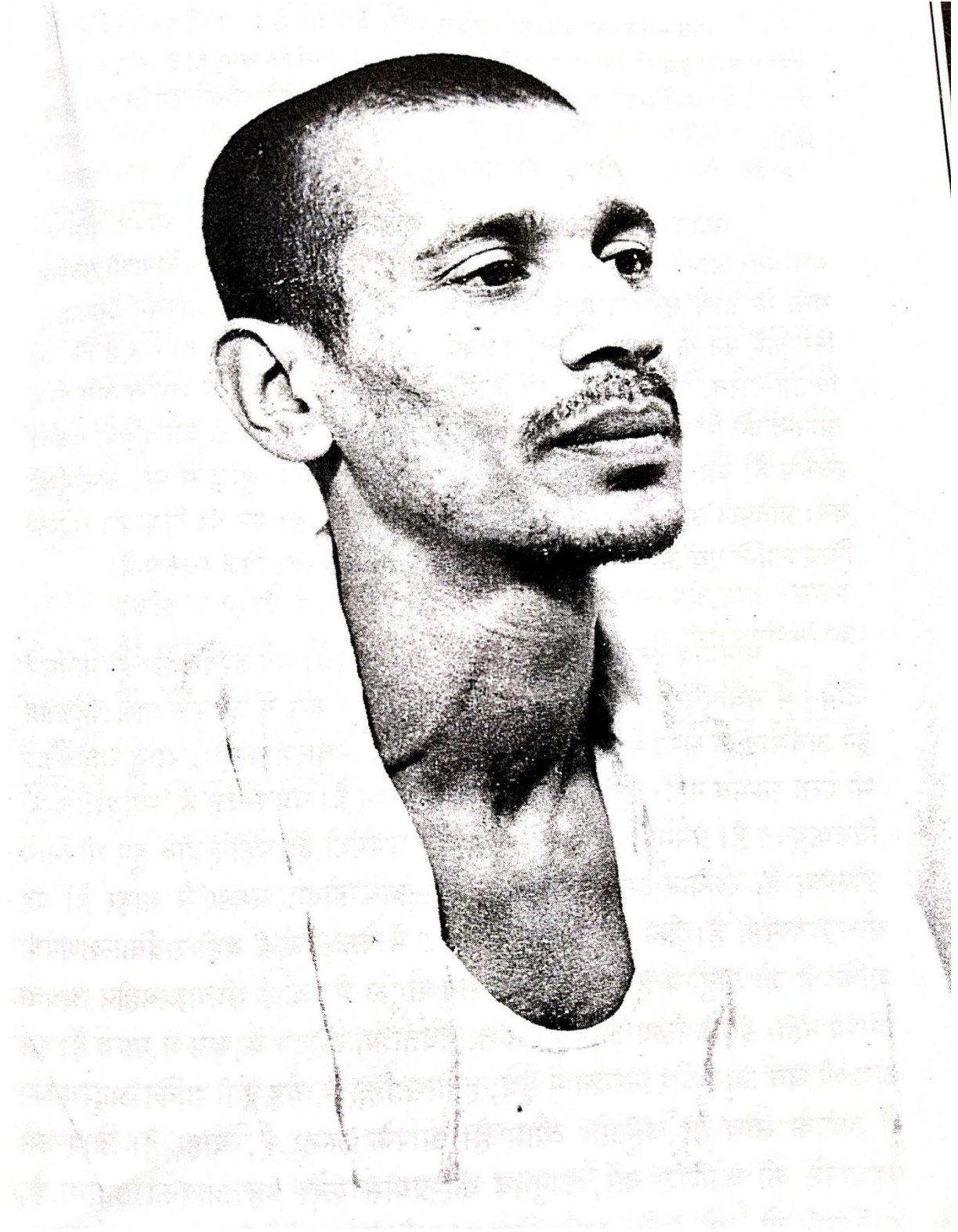
भक्तवृन्द को पत्रों द्वारा दिग्बोधन

मन्त्र-जप-साधन का सम्बल साथ होने पर आप कभी एकाकी हो ही नहीं सकते। इसको निश्चित जानें कि मन्त्र रूप में स्वयं भगवान् ही हैं और भगवान् ही मन्त्र हैं। मन्त्र सदा-सर्वदा आप में समाहित रहे। आपके जीवन का आधार मन्त्र ही है।

ॐ

सदा प्रसन्नचित्त रहें, प्रफुल्ल रहें। साहसी बनें। मैं तो सदैव आपके पास हूँ। यथार्थतः आपके अन्तर में विद्यमान अन्तर्वासी अन्तर्यामी की अविनाशी सर्वोच्च सत्ता के साथ सूक्ष्मतः मैं अभिन्न रूप से संयुक्त रहता हूँ। आपकी आपदाएँ, निराशाएँ मन के ही विकार हैं, मन का बाह्य स्वभाव है। सत्य तो यह है कि इन विपदा-ग्रस्त, अवसाद के क्षणों में भी आपके अन्तरतम में चिर शान्ति और परम आनन्द की स्थिति होती है। इसे जानें और समझें। यही आपका वास्तविक यथार्थ स्वरूप है। यह अन्तर का नित्य संस्थित स्वभाव है। मन-बुद्धि से परे, अन्तर्मुखी बनें। प्रतिपल आप इस एकरस शान्ति में निमज्जित रहें। मन पर नियन्त्रण रखकर नित्य शान्ति एवं आनन्द की अवस्था में रहें। यही आपका निज स्वरूप है।

ॐ

मानवीय इच्छा से ऊपर है, भगवद् इच्छा। यह ईश्वरेच्छा ही मानव- जीवन में सर्वोपरि है। सम्भव होता तो मैं व्यक्तिगत रूप से आपके पास पहुँचकर इन अवसाद के क्षणों में निराशा के अन्धकार का निवारण करता, परन्तु चाहते हुए भी ऐसा सम्भव नहीं। ईश्वरेच्छा की शक्ति महान् है। वह सर्वज्ञ है, न्यायशील है, विवेकयुक्त है। प्रेममयी, दयामयी तथा कल्याणमयी है। महान् होते हुए भी नित्य उपलब्ध है, लेकिन इसका गूढ़ और रहस्यमय होना, समझ से बाहर है। यह बोधगम्य नहीं है। फिर भी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में केवल एक यही सर्वकल्याणमयी शक्ति है जो अतुल्य है। इसके लिए सब समान हैं। कोई भी महत्त्वहीन अथवा नगण्य नहीं। इसके लिए आप भी सन्त, देवता या देवदूत के रूप में मान्य हैं। इस क्षण भी जब आप घोर निराशा में डूबे, हतोत्साहित हैं, यह दैवी शक्ति अदृश्य रूप से आपके साथ है। चहुँओर व्याप्त है। आपके अन्दर है, बाहर है। आप उसे पहचानने की कोशिश करें, अनुभव का प्रयास करें। वह आपका आत्मा है, अर्न्तमुखी हो, उसे जानें। इसके लिए कुछ विशेष करने की आवश्यकता नहीं; केवल यह जानना अपरिहार्य है कि दिव्य सत्ता की सर्वत्र उपस्थिति से सम्पर्क करने में आपके विचारों की श्रृंखला, कल्पनाएँ और अतीत की स्मृतियाँ सब अवरोधक हैं। आप उस दिव्यता से भिन्न नहीं प्रत्युत् अभिन्न हैं।

ॐ

आत्मबोध के लिए अपेक्षित है- मन का सहज मौन तथा विचारों पर सहज नियन्त्रण। इसके लिए मन और विचारों से जूझने और उत्तेजित होने की कोई आवश्यकता नहीं। कदापि ऐसा न करें। व्यग्रता तथा अधीरता आपके उद्देश्य-प्राप्ति में बाधक सिद्ध होंगे।

ॐ

चिन्तातुर न हों। सहज मन्द मन्द मुस्कान से अन्तर में आनन्दित रहने का स्वभाव बनाएँ। फिर कुण्ठा और नैराश्य आपके पास फटक भी नहीं सकते; आपका स्पर्श भी नहीं कर सकते; इन मनोविकारों से बचकर अपने 'वास्तविक

स्वरूप' में संस्थित रहने का भरसक प्रयत्न करते रहें। रुदन और उदासी तो मन की चालबाजी है, हर्ष और हास्य आपका जन्मसिद्ध अधिकार है। इसी का लाभ उठाएँ।

ॐ

प्रकृति के प्रांगण में, बाग-बगीचों में ई. एल. के साथ एक प्रातः - भ्रमण की स्मृति मेरे सामने उभर उठी है; धुँधले वातावरण में धरती पर गिरी टहनियों पर अचानक पैर पड़ जाना, अत्यधिक ठंडी हवा का चलना, ओस की बूंदों का चमकना, पुष्प-पौधों के निकट खड़े होकर मौन प्रार्थना के द्वारा भगवान् की दिव्य उपस्थिति की अनुभूति करना। क्या ही सुखद अनुभव था !

(अवसाद-ग्रस्त, हतोत्साहित एक माँ को)

यात्रा की व्यस्तता तथा लूर्ड्स, असीसी तथा सन ज्योवान्नी (पादरे पियो) इत्यादि सबके दर्शनोपरान्त इस पवित्र स्थान इज़रायल में पहुँचा हूँ। मैं आपको अवगत कराना चाहता हूँ कि कल और आज भी आपका बेटा मेरे विचारों में था, मेरी प्रार्थनाओं में भी शामिल रहा। गेथ्सेमने के बाग में, ओलिव के पहाड़ पर, बैथलेहम के पवित्र जन्म स्थान पर मैंने उसके कल्याण के लिए प्रभु से प्रार्थना की। मैंने परमपिता परमात्मा से याचना और अनुनय विनय की अपनी दया, करुणा, प्रेम-वर्षण कर उसे सद्बुद्धि प्रदान करें ताकि वह अपने आप को समझ सके, जान सके और समुचित राह पर आ जाये। उसे यह बताने की कृपा करें कि मैं सदैव उसके साथ हूँ; मेरे हृदय में उसके प्रति अगाध प्रेम है। वह चाहे मुझे नहीं जानता परन्तु आपके द्वारा मुझे उसकी पूरी पहचान है। मुझे उस पर विश्वास है। उसकी अधीरता, बेचैनी एक दिन समाप्त हो जाएगी और उसे स्पष्टतया एक नया दृष्टिकोण मिलेगा। सर्वज्ञ प्रभु के दिव्य ज्ञानालोक से उसका मार्ग प्रशस्त हो। वह अपने आपको एकाकी न समझे। भगवान् उससे इतना अधिक प्रेम करते हैं कि वह उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। एक दिन वह उस प्रेम को अवश्य समझेगा। लेकिन तब तक उसे हर हाल में, प्रत्येक परिस्थिति में पूर्ण रूप से सत्यवादिता का पालन करते रहना होगा। मुझे उस पर विश्वास है कि वह ऐसा अवश्य करेगा।

ॐ

करुणा-वरुणालय, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ प्रभु का अखण्ड ध्यान करते रहें तो जीवन के कष्ट-क्लेशों, तनावों तथा अन्यान्य घरेलू अथवा कार्य-क्षेत्र की समस्त समस्याओं की तरफ आपका ध्यान जायेगा ही नहीं। यही प्रभावशाली तरीका है उन्हें विजित करने का। हम सदैव प्रभु से निवेदन करते रहें। अपने जीवन में प्रभु को ही प्रथम और प्रधान स्थान पर मानें, तब जीवन-संग्राम में विजय ही विजय प्राप्त करेंगे। सामंजस्य, अनुकूलन, समायोजन आदि सिद्धान्तों का पालन कठिनाइयों का सामना करने, निन्दा, अपमान आघात सहन करने में सहायक होगा। आपका अन्तर प्रफुल्लता, निर्भीकता, प्रशान्ति तथा साहस आदि गुणों से परिपूर्ण हो। ईश्वर की आप पर कृपावृष्टि रहे।

ॐ

मेरे शारीरिक विश्राम के वस्तुतः उदार तथा प्रेमपूर्ण प्रस्ताव के लिए आपको हार्दिक धन्यवाद के साथ कृतज्ञता ज्ञापन करता हैं। मुझे भी इसकी सख्त जरूरत महसूस हो रही है, मेरा दिल भी यही चाहता है। परन्तु ऐसी मनोकामनाओं का हर समय पूर्ण हो जाना सम्भव नहीं। आपका धन्यवादी तो हूँ, परन्तु वर्तमान परिस्थितियों में

आध्यात्मिक ज्ञान-प्रचार-प्रसार सेवा में मुझे संलग्न रहना ही है। गुरुदेव से मुझे वात्सल्य भावपूरित जो पत्र प्राप्त हुआ है, आपको भेज रहा हूँ।

पत्र के अन्त तक लिखे गए अनुदेशों पर ध्यान देना आवश्यक है। उनका आशय स्पष्ट है, उनके आदेशों-निर्देशों का पूर्ण पालन किया जाये। कम से कम इतना तो अवश्य हो कि सेवा कार्य की बहुलता में भी विश्रान्ति का समय अवश्यमेव निकालना चाहिए। वापिस आने की बात का आशय केवल शरीर का विश्राम ही मुख्य है। विश्राम यहाँ सम्भव है, तो सोच समझकर ही योजना बनानी है।

मैं उनके ममतामय व्यवहार से पूर्णतया परिचित हूँ। अक्तूबर १९५९ में आश्रम से विदा लेते समय भी उन्होंने सेवा कार्य के बीच-बीच अन्तराल में विश्रान्ति के लिए सुझाव-आदेश दिया था। किन्तु उसका पालन करने में असफल रहा। उन्होंने कहा, "दो या तीन सप्ताह सेवा कार्योपरान्त एक सप्ताह अवश्यमेव एकान्त स्थान पर अज्ञातवास रूप में शरीर और मन को विश्रान्ति प्रदान करें। किसी से मिलें नहीं, मौन रखें। फिर इसको दोहराया।" किन्तु यहाँ के कार्यक्रमों की अटूट श्रृंखला में उस आदेश का पालन कर पाना कतई सम्भव न था। अब मुझे आशा है कि आगामी दक्षिणी अमेरिका के कार्यक्रमों का आयोजन गुरुदेव के आदेशानुसार ही किया जाएगा।

श्री गुरुदेव का पत्र

आदरणीय अमर आत्मन् !

ॐ नमो नारायणाय।

श्री ऐन बरियन के पत्र से ज्ञात हुआ कि आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है। ऐसी स्थिति में कृपया आप तुरन्त आश्रम वापिस आ जायें। अपना ठीक-ठीक हाल मुझे लिखने की कृपा करें। आध्यात्मिक ज्ञान-प्रचार-प्रसार हेतु आपको वहाँ यात्राएँ बहुत करनी पड़ीं। कार्यक्रमों की व्यस्तता में अपनी सेहत का भी ध्यान नहीं रखा। अभी आपको विश्राम की अत्यधिक आवश्यकता है। अब अपने कार्यक्रमों में कुछ कटौती कर दें। हर पन्द्रह दिन के कठोर परिश्रम के उपरान्त किसी एकान्त-शान्त स्थान पर कुछ दिन विश्रान्ति लें। इससे साथ ही साथ आपको स्वास्थ्य लाभ होता रहेगा। अमेरिका में अब तक आपने आश्चर्यप्रद सेवा-कार्य कर दिखाया है। साफल्य की यह एक महान् उपलब्धि है। मुझे आपके द्वारा भेजी सब भेंट मिलती रहीं, जो समयोचित अत्यन्त सहायप्रद रहीं।

मानव-जीवन की अर्थवत्ता दया, करुणा, सेवा, आत्मत्याग, मुमुक्षुत्व तथा ध्यानाभ्यास में है। मानव जीवन अत्यन्त दुरूह है, यह वेदना, विपदाओं विपत्तियों से भरा है, जिसका परिणाम सफलता तथा महान् उपलब्धि की प्राप्ति है। व्रत-उपवास तथा आत्म-संयम द्वारा इन्द्रियों पर नियन्त्रण करना सहज हो जाता है। मोक्ष प्राप्ति के लिए इच्छा-कामना-रहित जीवन सहायक होता है। मैं आपके सुस्वास्थ्य, दीर्घायु, शान्ति तथा आत्म-साक्षात्कार के लिए नित्य निरन्तर प्रार्थना करता रहता हूँ।

स्वामी शिवानन्द
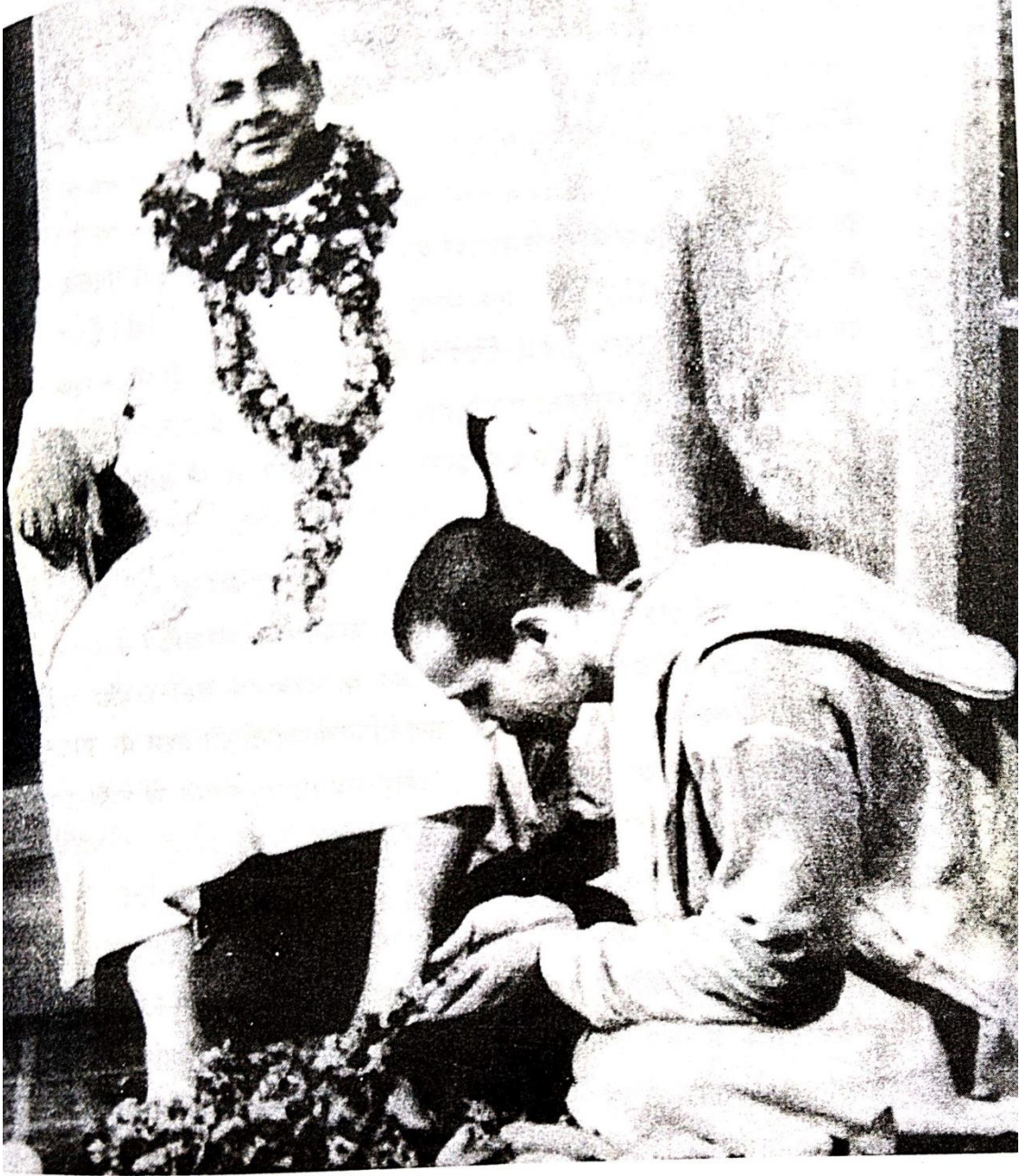
भारतवर्ष से पत्र-व्यवहार - १९६२-६३

"आध्यात्मिक परिवार के आप सब स्नेही जन, मेरे स्मृति पटल पर हमेशा रहे हैं। कल्पना तथा विचारों में ही सबके पत्रोत्तर देता रहा, परन्तु लेखनी से असम्भव रहा। आपको आश्चर्य तो हुआ होगा कि आखिर क्या कारण हो सकता है इस दीर्घ मौन का, जो इस स्वामी की ओर से उत्तर में एक भी शब्द या एक लाइन और शुभकामनाएँ तक भी आपको नहीं भेजी जा सकीं। सदाचरण के दृष्टिकोण से मुझे इसके लिए आपके समक्ष बार-बार क्षमा प्रार्थी होना चाहिए। कुछ बातों में तो मैं भी विवश हो जाता हूँ किसी एक समय जो कार्य सहजतया हो जाते हैं, दूसरे समय कभी-कभी उनको करने के लिए अपने को असमर्थ पाता हूँ। भारत आने से पूर्व विदेश में लगातार व्यस्तता में भी आप जैसे जिज्ञासुओं के साथ पत्र लिखकर सम्पर्क बनाये रखा। परन्तु भारत में आकर बहुत चाहने पर भी अपने प्रयास में असफल ही रहा।

विदेश से २३ जनवरी १९६२ को मैं आश्रम पहुँचा। दो महीनों तक मैं एक भी पत्र नहीं देख पाया। गुजरात की दिव्य जीवन संघ-शाखाओं के अनुरोध पर एक अप्रैल को वहाँ जाना पड़ा। मई मास के मध्य तक वहाँ के आयोजित कार्यक्रमों में व्यस्त रहा। १३ मई को दक्षिण के तीर्थ स्थलों की यात्रा हेतु प्रस्थान किया। यात्रा के दौरान, मैं जिस जिस जगह ठहरता हूँ, किसी से टाइपराइटर लेकर केवल कुछ भक्तों को ही प्रत्युत्तर देने का प्रयास किया जा रहा है। उसी क्रम में यह पत्र आपको भेजने में सफल हो पाया हूँ। यद्यपि इस अवधि में मैं मौन हूँ, तथापि मेरे विचारों में, प्रार्थनाओं में भी आप सदा हैं। मैं आपको भूला नहीं। आप, आपके परिवार के सभी सदस्य तथा अन्य कई जिज्ञासु जन जो आप ही की भाँति ईश्वर-प्राप्ति के लिए लालायित हैं, किसी को भी बिल्कुल नहीं भूल पाया। परमपिता परमात्मा से अपने हृदय-तल से प्रार्थना-याचना करता हूँ कि अपने दिव्य ज्ञानालोक से आपका पथ आलोकित करें, अपनी अगाध प्रेम-दृष्टि, करुणा दृष्टि से आपकी आत्मा की प्यास को तृप्त करते रहें।

अध्यात्म ज्ञान-रहित जीवन महत्त्वहीन है, अर्थहीन है, निस्सार एवं नीरस है। यहाँ तक कि निष्प्राण है। शान्ति का भी अभाव रहता है। अपनी गृहस्थी के, समाज के तथा अन्य कई क्रिया-कलाप मानव के बाह्य जीवन-शैली के परिचायक हैं। बिना आभ्यन्तर आध्यात्मिक प्रगति के वह उस सूने गृह की भाँति है जिसके अन्दर साज-सज्जा तो पूरी है, पर रहने वाला कोई नहीं, घर सूना पड़ा है। जीवन की सार्थकता तो अध्यात्म-पथ का पथिक बनने में, जिज्ञासु, मुमुक्षु, साधक बनने में है। श्रद्धा, प्रेम, निष्ठा, भक्ति, सेवा और साधना द्वारा अपनी आन्तरिक दिव्यता को साकार रूप देना है, आपके व्यक्तित्व से दिव्यता का ही प्रकटीकरण होता रहे।

अब तो मैं अपने लिए ईश्वरेच्छा की ही प्रतीक्षा कर रहा हूँ। साधकों- जिज्ञासुओं को ईश्वर-इच्छा के अनुरूप ही जीवन व्यतीत करना चाहिए जो एक कठिनतम कार्य है, परन्तु है यह अपरिहार्य। इसकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। ब्रह्म-ज्ञान, ज्योति-दर्शन तक यही अभ्यास करते रहना चाहिए, परन्तु कष्टकर बात यह है कि अध्यात्म ज्ञान-प्रकाश की तो केवल झलक मात्र दर्शित होती है, तब मानव-मन अधीर होकर, सोचता है कि एक साथ ही भरपूर प्रकाश मिल जाये जिससे जीवन के अन्त तक पथ प्रकाशित होता रहे। परन्तु मानव के चाहने के अनुसार तो सब कुछ घटित नहीं होता, विधि का विधान तो कुछ और ही होता है। नैराश्य के अन्धकार में साधक भटकता रहता है, उसे चहुँ ओर अन्धेरा ही अन्धेरा दिखता है। वह साधक सोच नहीं पाता कि अन्धकार के बाद प्रकाश अवश्यम्भावी है, जैसे रात के बाद दिन का आगमन। उसे अन्धकार में जीवन बिताना कठिन और कष्टकर लगता है और वह धैर्यहीन हो जाता है। उसे विश्वास नहीं हो पाता कि आशा की किरण अवश्य दिखाई देगी। अतः ईश्वर इच्छा ही सर्वोपरि है।

जब मैं नवम्बर महीने में आपके साथ था, एक छोटी-सी पुरानी पुस्तक जो आपके लिए छोड़ आया था, क्या आपने उसमें फेनेलोन के पत्रों को देखा ? उरुगाय जाते हुए लन्दन में इसे लिया था। मैं उसे केवल एक बार ही देख पाया

था, और तुरन्त मुझे ऐसा भास हुआ कि वह पुस्तक आपको देनी चाहिए, किसी अन्य को नहीं। वह मेरे पास ही थी। जब मेरा सामान आवश्यकता से अधिक हो गया तो उसे आपको भेजना ही उचित समझा।

आशा ही नहीं मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपके परिवार में सब प्रकार से कुशल-मंगल होगा। ईश्वर आपका मार्ग प्रशस्त करते रहें, आपको आनन्द, शान्ति, शक्ति प्रदान करते रहें। भारत को वापसी यात्रा में आयोवा जाने के लिए आप मुझे कार द्वारा हवाई अड्डा छोड़ने गये थे। रास्ते में आपके साथ आध्यात्मिक वार्ता होती रही, वही सब पर्याप्त है। अब और अधिक मैं क्या कहूँ। भविष्य के लिए मार्ग-दर्शनार्थ उस समय कुछ सुझाव दे दिये थे। आध्यात्मिक साधना प्रदर्शन हेतु नहीं और न ही घोषणा करने के लिए है। यह तो जीवन जीने के लिए सहायक है, प्रतिपल अभ्यास का विषय है। जो कठिन नहीं, सरल है। शत- प्रतिशत लौकिक कामनाओं से निरासक्त रहकर परमपिता परमात्मा के प्रति श्रद्धा, निष्ठापूर्वक भक्तिभाव से जीवन व्यतीत करना है।

कामना-रहित जीवन वस्तुतः जीने योग्य जीवन है। साधक के लिए इच्छा-आकांक्षा मृत्युवत् है। जहाँ कामना है, वहाँ आत्मशक्ति क्षीण हो जाती है। आत्म-विकास में इच्छाएँ बाधक हैं। इच्छा रहित जीवन कर्तव्य कर्मों की पूर्ति में अवरोधक नहीं है। फल की आसक्ति रखे बिना निष्काम रूप से कर्तव्य कर्म पूर्ण करें। दिव्य चेतना के भाव सहित निष्काम कर्मों की पूर्ति मोक्ष प्राप्ति का साधन हो सकती है। परिणाम की आशा से रहित कर्म मानव को बन्धन-मुक्त करता है। ब्रह्ममय होना ही जीवन की एकमात्र तीव्र आकांक्षा होनी चाहिए, जिसकी पूर्ति में मनोयोगपूर्वक लगे रहना चाहिए। आत्म-साक्षात्कार प्राप्ति सात्त्विक अभिलाषा है। ऐसी दिव्य आकांक्षा का स्वागत करते हुए इस परमधन को अपने अन्तरतम के गुह्य कोष में संजोए रखें। भक्तों द्वारा अपनी दैनिकचर्या में दिव्यता को व्यावहारिक रूप देना है। इसके लिए बाहरी किसी विशेष अभ्यास-साधना के चक्र में न फंसें। आदर्श दिव्य जीवन हेतु आन्तरिक जीवन-प्रवेश के लिए यद्यपि कुछ अभ्यास तो सहायक होते हैं जिन्हें व्यवहार में लाना होता है। ये तीन बातें प्रमुख हैं, ध्यान देने योग्य हैं – अभिलाषा, अभिलाषा-पूर्ति और अभ्यास। आशय तो तीनों का एक ही है। निकट भविष्य में पत्र लिखना सम्भव होगा कि नहीं, मैं कुछ कह नहीं सकता। वर्तमान परिस्थिति के अनुसार मैं इसे ईश्वर-इच्छा पर छोड़ता हूँ।

प्रिय आत्मन् बिल ! आप भली-भाँति जान लें कि गुरुदेव की कृपा आप पर प्रचुर मात्रा में है। अपने मन्त्र जप का अभ्यास भी करते रहें, हर प्रकार से वही आपका एक मात्र संरक्षक है। यह आपके आध्यात्मिक पथ को प्रकाशित करता है। आत्म-साक्षात्कार की आन्तरिक ऊर्ध्वारोहण की यात्रा में मेरी हार्दिक प्रार्थनाएँ आपको बल देती रहें। ईश्वर सदा सर्वदा आपके साथ हैं। आपके प्रिय निकटतम परिजन जिनके आत्मोत्थान के लिए भगवान् ने आपको कुछ समय के लिए धरती पर भेजा है, उन सबको मेरे प्रेम भाव, आदर तथा अनेकानेक मंगलकामनाओं सहित पत्र लेखन समाप्त करता हूँ। ॐ नमः शिवाय।।"

" आपके पत्र के साथ अनुपम उपहार प्राप्त कर महान् आश्चर्य हुआ। समुचित स्थान, समुचित समय पर समुपयोगी सुनिश्चित राशि; सर्व प्रकारेण ये सब मेरे लिए अत्यन्त विस्मयजनक और अर्थगर्भित रहा। अपनी इस अयोग्य सन्तान की पग-पग पर सम्हाल रखते हुए भगवान् अपना परमपिता परमात्मा होना प्रमाणित करते हैं। यह उनका अपनी सन्तान के प्रति वात्सल्य का द्योतक है। वे जितना हमारा ध्यान रखते हैं हम तो उसका शतांश भी नहीं समझ सकते। यथोचित समय पर उनका कृपा-वर्षण मेरे लिए अत्यन्त महत्त्व रखता है।"

ॐ

एक निष्ठावान आध्यात्मिक साधक को ईश्वरेच्छा ही सर्वोपरि मानकर अपना प्रत्येक कदम आगे की ओर बढ़ाना होता है। चाहे मार्ग में आने वाली कितनी ही कठिनाइयों-कष्टों-दुविधाओं-बाधाओं का उसे सामना करना पड़े परन्तु असीम सहनशक्ति, सहिष्णुता, सहनशीलता से अप्रतिकारपूर्वक सब सहना चाहिए। ऐसा बोध होने पर वह शाश्वत आनन्द तथा आत्मिक शान्ति का नित्य अनुभव कर सकता है।"
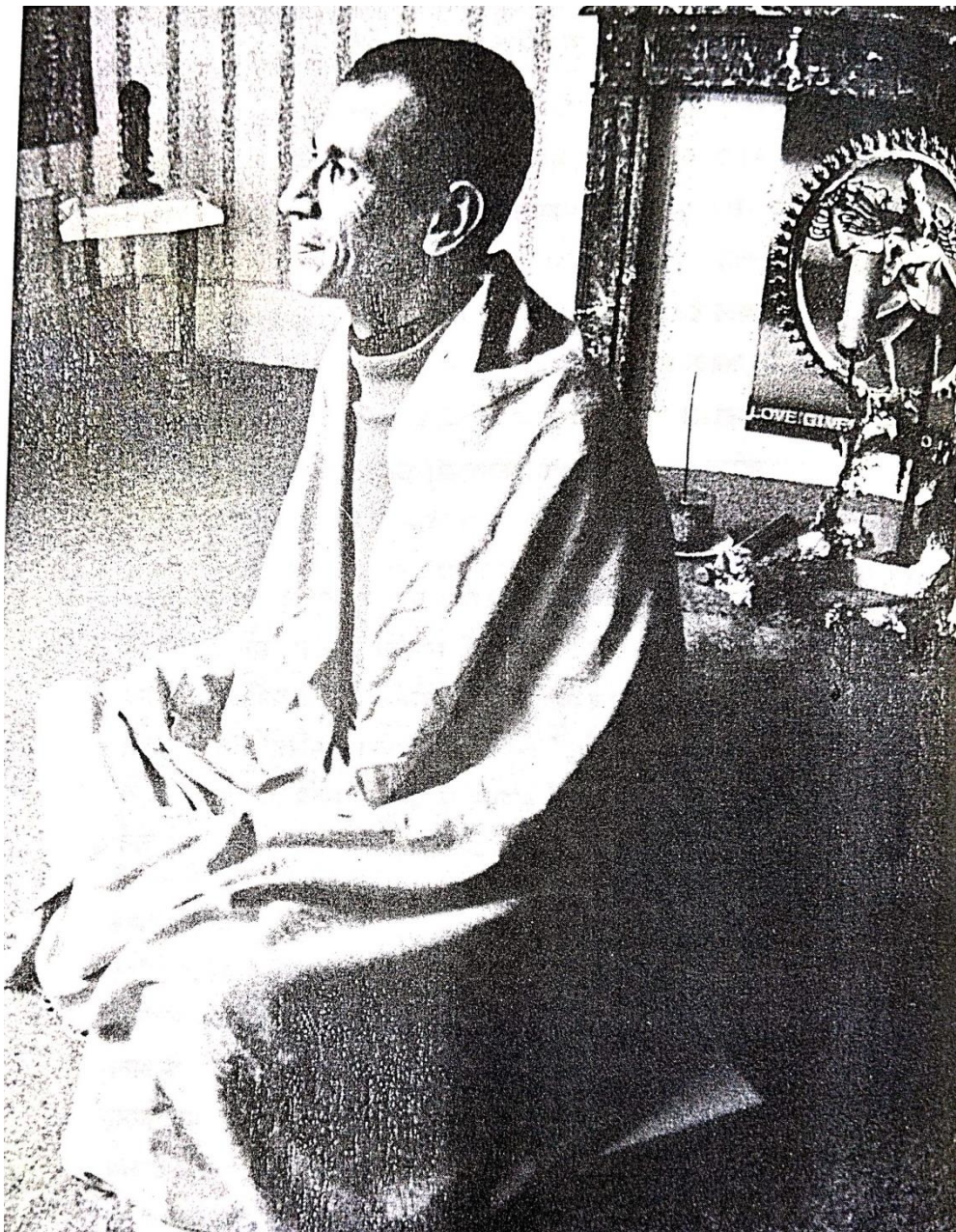
No child of
God is <u>unworthy</u>
The very fact
that one is a
child of God
makes one Worthy.

I love you and want
you to be happy, hence I say these
truths unto you again and again.
My one wish is that you should
find the peace and the joy that is
within and is nowhere else upon all
this earth. You must experience It. Now!
God has given you your Guru. Do not
search for Guru any more.
Move towards God Within!

Yours in the Divine
Swami Chidananda
ॐ

शिरडी तीर्थ-संस्मरण

दक्षिण भारत के मद्रास शहर में व्यतीत अपने पूर्वाश्रम-जीवन को अलविदा कहते हुए वर्ष १९४३ में सुदूर अज्ञात गाँव शिरडी में, जो परम पूज्य श्री श्री साईं बाबा का स्थान है, मैं था। उनके पूज्य दिव्य चरणों में मेरा कोटि-कोटि साष्टांग दण्डवत प्रणाम !

चालीसवें दशक के प्रारम्भिक वर्षों में, मैं उत्तर भारत के ऋषिकेश में परम आराधनीय सद्गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के शिवानन्द आश्रम में स्थायी रूप से निवसित हो गया। यथार्थतः, मैं गुरुदेव के श्रीचरणों में वर्ष १९ मई १९४३ की बुद्धपूर्णिमा के पावन दिवस पर पहुँचा। उस समय मैं २७ वर्षीय नवयुवक था। मैंने अपने घर का ६ मार्च १९४३ को त्याग किया और तिरुमला- तिरुपति जा कर महान् प्रभु श्री श्री वेंकटेश्वर भगवान् के दर्शन किये। प्रभु के अर्चकों की कृपापूर्ण सहायता से मैं उस पवित्र पहाड़ी पर दस दिनों तक रहा। उस अवधि में, मैं हर २४ घण्टे में अनेकों बार श्री वेंकटेश्वर भगवान् के दर्शन किया करता था।

मेरा अगला गन्तव्य स्थान पवित्र ग्राम शिरडी था। मैंने दौंड तक की यात्रा रेल से की। दौंड रेलवे स्टेशन से रेल की एक छोटी यात्रा चितले तक की, जो दौंड और मनमाड के बीच है। चितले से मैं शिरडी आया। मैं पूरे एक माह तक शिरडी में रहा। वहाँ बहुत कम लोग रहते थे। शिरडी साईं बाबा मन्दिर के कार्यालय में काम कर रहे एक सज्जन श्री गोविन्द राव कुलकर्णी ने देखा कि मैं एक शिक्षित व्यक्ति हूँ एवं अंग्रेजी अच्छी तरह पढ़ और लिख सकता हूँ। यह जान कर कि मैं एक महाराष्ट्रीय परिवार का हूँ, जिसकी मातृभाषा मराठी है, श्री गोविन्द राव कुलकर्णी ने मुझसे उन्हें उनके कार्यालय के काम में मदद के लिए अनुरोध किया। मैंने इसे सहर्ष स्वीकार किया।

उन्होंने मुझे चावड़ी और चावड़ी के बगल में स्थित सुसंग्रहीत पुस्तकालय में झाड़ू लगाने एवं धूल की सफाई करने को भी कहा। मैं एक झाड़ू लाया और किसी प्रकार चावड़ी में झाड़ू लगाया और सफाई की। लेकिन जब मैंने पुस्तकालय में प्रवेश किया, तो मुझे जीवन का भारी झटका लगा। फर्श आधा ईंच सूक्ष्म धूलि से ढका था। वहाँ अनेकों पुस्तकें थीं, पर सभी धूल से ढकी थीं। हर ओर मकड़ी के जाले झूल रहे थे। एक कोने में कुछ पुराने अखबार पड़े थे। कुछ क्षणों के लिए मैंने सोचा कि यह कार्य असम्भव है, लेकिन फिर साईं बाबा की याद ने महसूस कराया कि यदि मैं यह काम नहीं करता हूँ, तो मैं बाबा जी की अनमोल और विलक्षण सेवा से वंचित रह जाऊँगा। इसलिए मैंने एक बड़ा-सा रूमाल अपने नाक और मुँह पर लपेटा और उसके दो छोरों को सर के पीछे सख्ती से बाँधा। पूरे दो दिन तक मैंने धूल की मोटी परत को झाड़ा, पुराने अखबारों में उसे उठाया, पुस्तकालय से बाहर आया और दूर जा कर धीरे से धूल को खुले मैदान के एक छोटे-से हिस्से में डाल दिया। पुस्तकालय के मूल फर्श को देख पाने में मुझे पूरे दो दिन लग गए। पहले प्रत्येक पुस्तक को पुस्तकालय की अलमारी से बाहर निकाल कर उसकी धूल झाड़ कर, अलमारी की सफाई कर, वापिस यथास्थान रखा और फिर बाल्टियों में पानी ला कर फर्श की धुलाई कर दी। श्री गोविन्द राव कुलकर्णी मेरी सेवा से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने मुझे बुलाया और समाधि-भवन से सटे दोनों ओर के कमरों में से एक कमरे की चाबी मुझे दे दी। अप्रैल-मई १९४३ के लगभग मैं वहाँ पूरे एक महीने तक रहा।

पूज्य बाबा जी की समाधि के ठीक पीछे स्थित कुएँ (बावड़ी) के ठण्ढे पानी से मैं नित्य स्नान करता था। मैं एक गागर में रस्सी बांध कर जल निकालता था और उसे अपने सिर पर डाल देता था। मैं बाबा जी की तीनों आरतियों में उपस्थित रहता और आरती के साथ मराठी-पाठ में भाग लेता था। उनमें से कुछ मध्याह्न-पाठ पूज्य श्री दासगणु जी महाराज द्वारा रचित थे। श्री विठ्ठल राव नाम का एक भक्त सवैतनिक गायक-कर्मचारी था जो सभी भजन तीनों आरतियों में, तीन अलग-अलग समय पर जैसे प्रातः, मध्याह्न एवं रात्रि में गाया करता था। वह प्रातः काकड़ आरती,

मध्याह्न भोग आरती, एवं रात्रि शेज आरती गाया करता था। मेरे उस प्रवास-काल में, १९४३ के उस छोटे शिरडी के कोने-कोने को मैं जान गया था। यह मेरा सौभाग्य था कि मैं साईं बाबा के सहचर अब्दुल्ला बाबा से मिला।

उसके बाद रामनवमी का त्यौहार आया। साईं बाबा की जय ! साईं राम महाराज की जय ! इस प्रकार जयकार करते हुए सैकड़ों लोग कोपरगाँव आदि स्थानों से दो बड़े जल-पात्रों में पवित्र गोदाबरी का जल-भरा कावड़ लेकर, कोपरगाँव से १४ मील की यात्रा करते हुए आये। कावड़ का वह जल, बड़े भक्ति के साथ साईं बाबा की समाधि पर चढ़ाया गया। ईश्वर ही जानते हैं कि उस पवित्र श्री रामनवमी के पुनीत अवसर पर कावड़ियों में भरे कितने जल से बाबा जी का अभिषेक हुआ ! उसी दिन में पहली बार श्री दासगणु महाराज का दर्शन कर सका। अगले दिन गोपाल काला था। इसके बाद मैंने शिरडी से विदा ली तथा उत्तर में वृन्दावन और मथुरा की ओर बढ़ चला। श्री दासगणु महाराज, जो समाधि-मन्दिर के एक दरवाजे की सीढ़ियों पर बैठे थे, विदा से पूर्व उन्होंने मुझे बुलाया और उन्हें जब यह ज्ञात हुआ कि मैं एक जनेऊधारी ब्राह्मण हूँ तो उन्होंने मुझे धोती, पान- सुपारी और एक नारियल भेंट किया। यह मेरा अति प्रारम्भिक अनुभव था।

उसके पश्चात्, अभी चार-पाँच वर्षों के पूर्व मैंने शिरडी की यात्रा की। वह इतना विशाल हो गया है कि मैं उस स्थान को पहचान न सका। जिस दिन मैंने यह यात्रा की, उस दिन गुरुवार था और मुम्बई, ठाणे, नासिक आदि से भक्त उमड़े पड़ रहे थे। वे हजारों की संख्या में थे। परन्तु फिर भी भारी संख्या में आये भक्तों को लोहे की रेलिंग के बीच शान्तिपूर्वक पंक्ति-बद्ध करने की व्यवस्था भी अत्यन्त उत्कृष्ट थी।

समापन से पूर्व मैं आप सबको यह सूचित करना चाहूँगा कि शिरडी साईं बाबा के एक प्रगाढ़ भक्त मुझे नियमित रूप से द्वारका माई की धूनी से ताजा उदी भेजते रहते हैं। इसमें से थोड़ी मैं अपने ललाट पर लगाता हूँ, थोड़ी-सी अपनी जीभ पर रखता हूँ और शेष मेरे तकिए के नीचे रखी जाती है, वह अभी भी वहाँ है। साईं नाथ महाराज की जय !

साईं नाथ भगवान् और सद्गुरु भगवान् श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के चरणों का सेवक,

चिदानन्द हूँ ।। ॐ
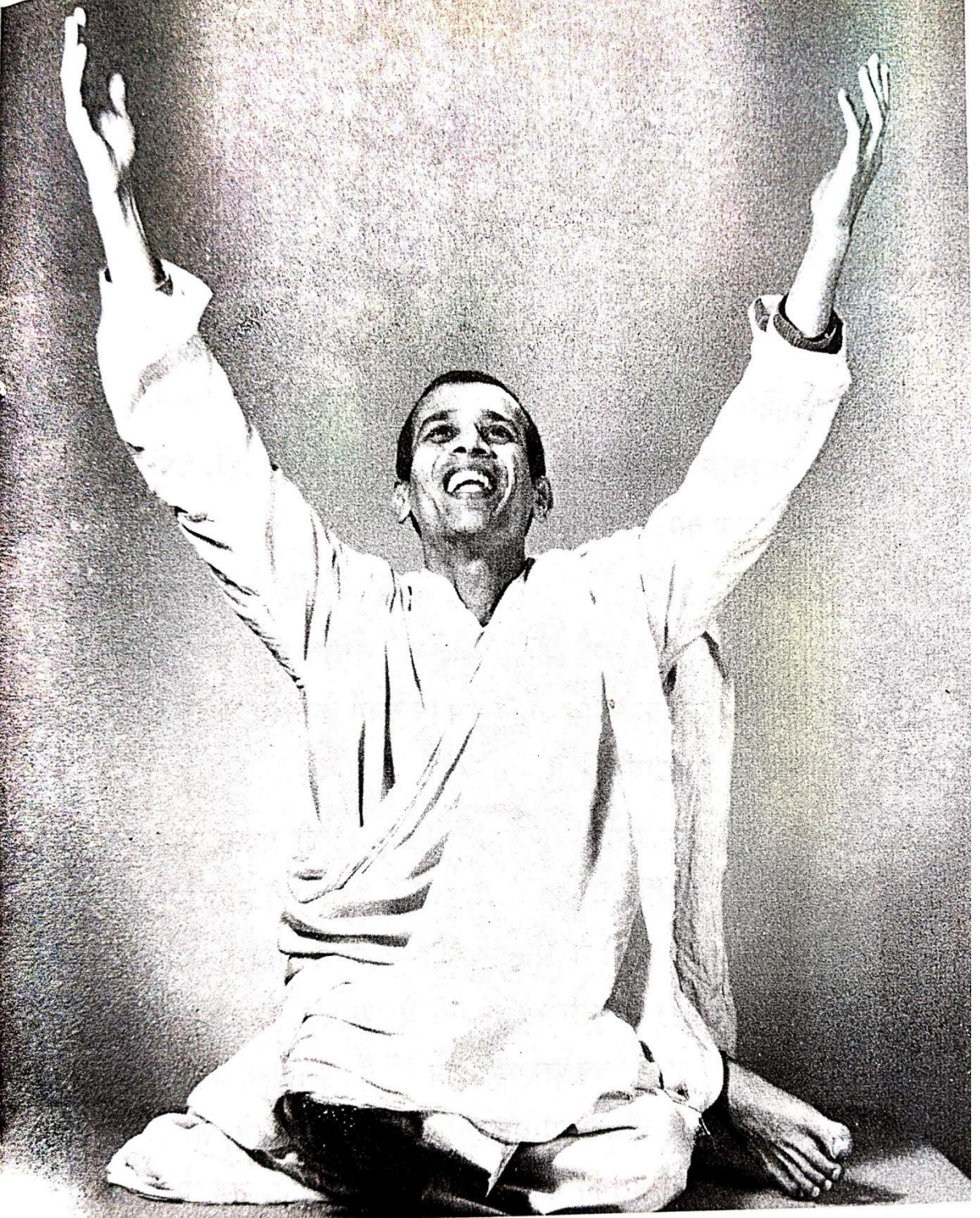
मैं जो समझ सका हूँ, वह है कि मैं इस धरती पर परमात्मा द्वारा सोद्देश्य भेजा गया हूँ। वह उद्देश्य विशेष यही है- पर पीड़ा को सुनना, समझना, ध्यान देना तथा उसके निवारण के लिए यथासम्भव, यथाशक्ति, यथासामर्थ्य, यथास्थान

तथा यथासमय जीवन के अन्तिम श्वास तक प्रयत्न करते रहना है। जहाँ सम्भव नहीं, वहाँ 'हरि इच्छा' समझ कर शान्त रहना है।

भले ही आप या अन्य सैकड़ों व्यक्ति किसी भी कार्य के दायित्व लेने या न लेने पर आक्षेप करते रहें। यथार्थ सत्य तो यह है कि इस संसार में प्रत्येक मानव अपने-अपने कर्मों के लिए उचित रूप से वह स्वयं ही उत्तरदायी है।

जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मेरे ऊपर किसी प्रकार का कोई दायित्व नहीं, क्योंकि मैं किसी भी कार्य में लिप्त नहीं होता। निर्लिप्त भाव से कार्य करता हूँ। मैं अकर्ता हूँ। इसलिए मैं दायित्व-रहित हूँ। देखने में यह बात मामूली सी लगती है, सत्यतः मेरा यह सन्देश विचारणीय है। अगर आप इस पर ध्यान देते हैं; इस तथ्य को ध्यान में रखते हैं, तो आप ही लाभान्वित होंगे। अगर नहीं करते, तो स्वामी चिदानन्द के ऊपर इसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं होगी। वह तो इससे अप्रभावित ही रहेंगे।

ॐ

समुद्र में नमक की डली डालने पर वह उसमें घुलकर सागर के साथ एकरूप होकर सागर ही हो जाती है। उसका अस्तित्व लुप्त प्रायः न होकर विशाल हो जाता है। इसी प्रकार आत्म-साक्षात्कार प्राप्त सन्त ईश्वर के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं, एक हो जाते हैं। उनमें ईश्वरता समाहित हो जाती है। वे महान् हो जाते हैं।

एक प्रबुद्ध महात्मा के लिए विरोधाभासी स्थिति हो जाती है। जब उन्हें शाश्वत सत्य का बोध हो जाता है, तो उनके लिए भूत, वर्तमान, भविष्य अर्थ ही नहीं रखते, सब अभी और यहीं का रूप ले लेते हैं, यही यथार्थ सत्य है। अतीत की स्मृति का कोई प्रश्न ही नहीं रहता। वर्तमान ही उनके लिए महत्त्वपूर्ण हो जाता है। द्वितीयतः, पूर्व जन्मों के विषय में सोचने की कोई अनिवार्यता नहीं, पूर्व जन्म सब मायाजनित भ्रान्ति है जिसका कभी कोई अस्तित्व ही न था।

ॐ

आत्म-बोध, आत्मा की आन्तरिक यात्रा है।
जिसमें न आरम्भ है, न विराम ।

यह आत्म-जाग्रति का पथ है,
जो चेष्टा-रहित, क्रियारहित है मूक।

परमात्मा की सर्वव्यापकता की
सजगता की क्रमानुसार प्रगति है,

पग-पग आगे बढ़ना है।

प्रारम्भ में यह मन्द ज्योति सम है,

जब तक प्रोज्वल रूप लेकर यह तेजोमय हो जाए,
तब तक यह धीरे-धीरे प्रदीप्त होती रहती है।
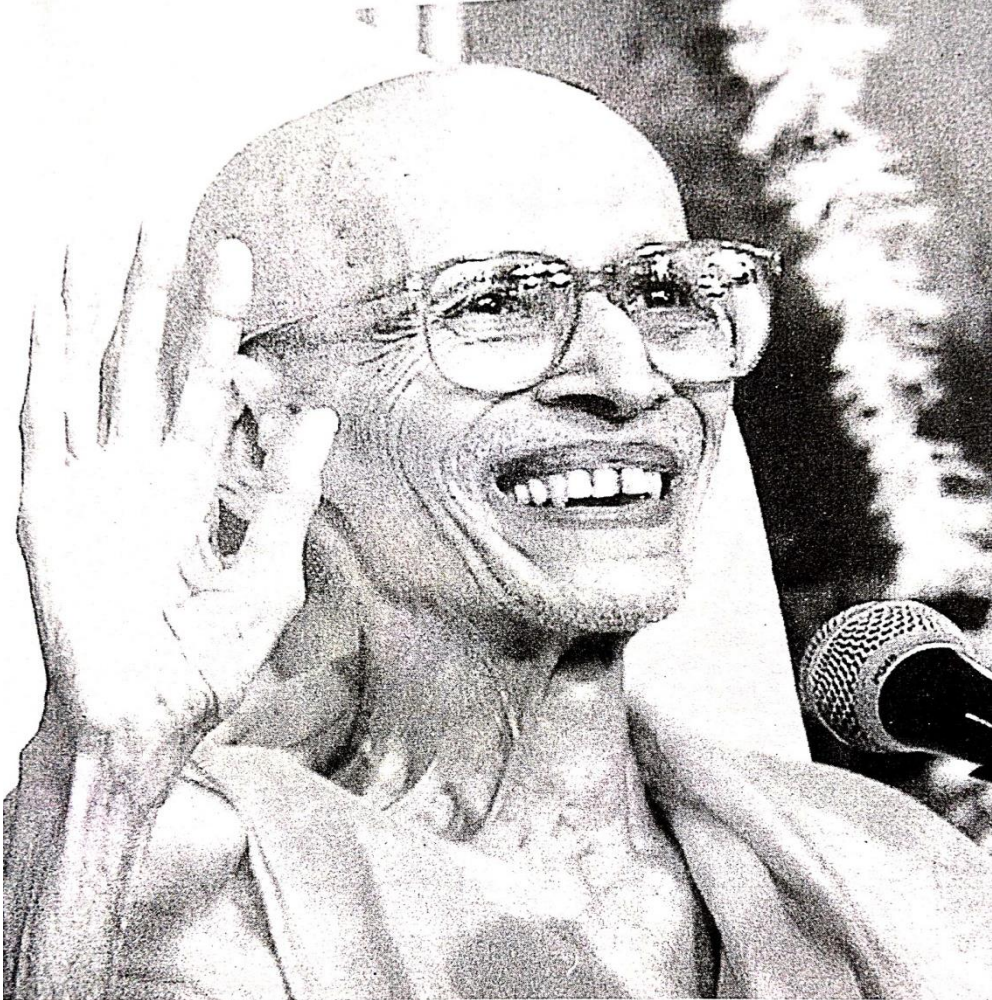
ॐ

ॐ-ॐ-ॐ- मैं सत् चित् आनन्द हूँ।

ॐ-ॐ-ॐ - मैं सीमा रहित असीमता हूँ।

ॐ-ॐ-ॐ- मैं काल-रहित अनन्तता हूँ।

ॐ-ॐ-ॐ

मैं चेतना की चौथी अवस्था तुरीयावस्था हूँ,

जाग्रत-स्वप्न और निद्रावस्था का साक्षी हूँ।

मैं अवस्था त्रय से परे हूँ।

न सोना है, न जागना,

सदा सर्वत्र रहने वाला,

मैं हूँ आत्म-तत्त्व।

मैं आत्म-तत्त्व ही हूँ ।

जाग्रति मेरी सत्ता है,

आत्म-जाग्रति का परिचायक हूँ।

आत्म-बोध है मेरा परिचय।
यही है आत्म-चिन्तन ।
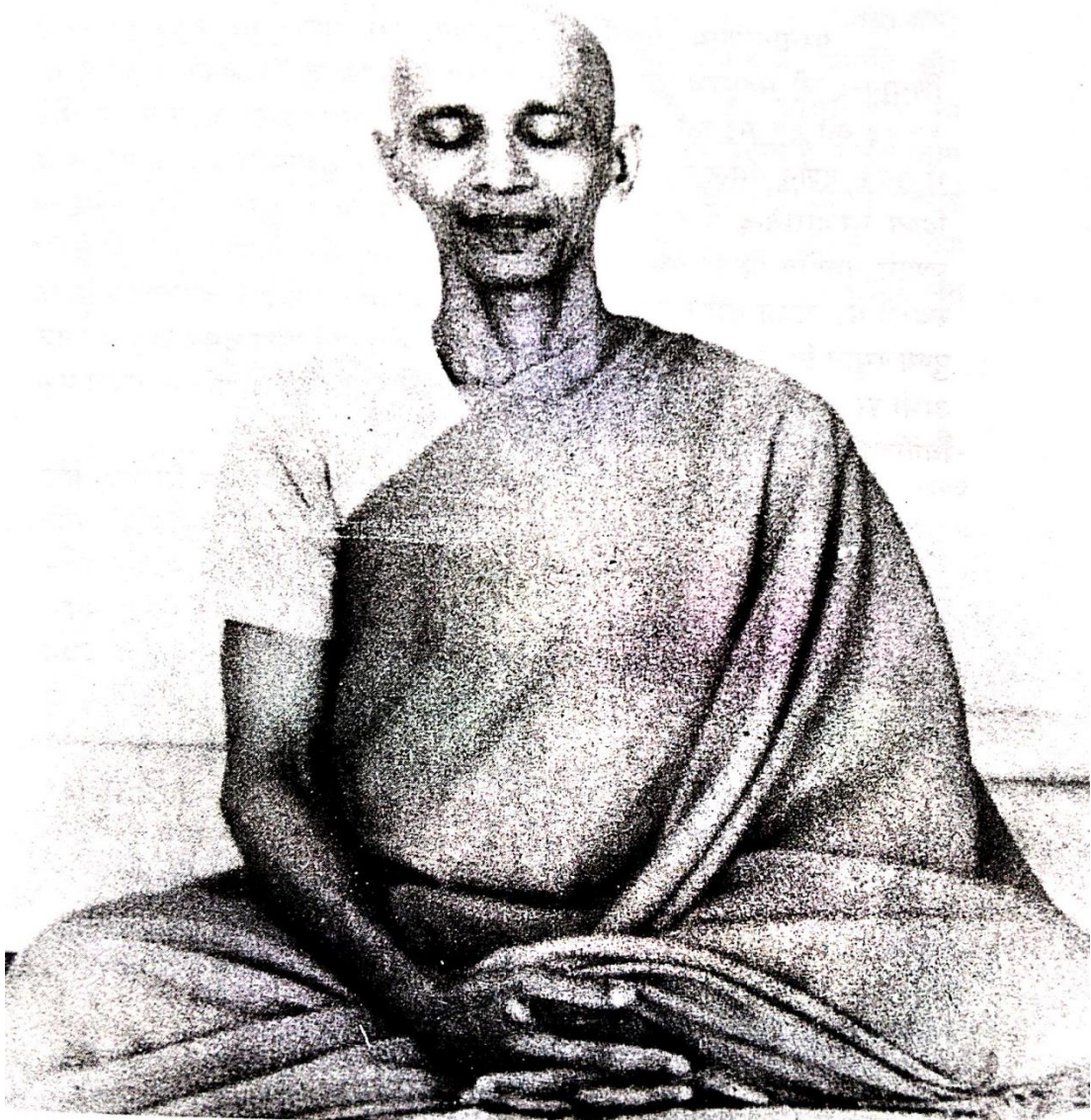
आनन्दोऽहं

परमादरणीय, परमप्रिय, श्रद्धास्पद, परम पावन सद्‌गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज का एक सौभाग्यशाली शिष्य हूँ मैं। अपने जीवन में सन् १९४३ की १९ मई को पूर्णचन्द्र की अलौकिक अनुपम छटा-युक्त सान्ध्य बेला में उनके दर्शन-मिलन का आनन्दप्रद चिराकांक्षित शुभावसर प्राप्त हुआ। उनके दिव्य चरणारविन्द में नतमस्तक हो, सर्व समर्पण भाव-युक्त साष्टांग दण्डवत प्रणाम समर्पित किये। वह वैशाख मास की पूर्णिमा थी; जो बोध गया की पुनीत स्थली में, पवित्र बोधि वृक्ष की छत्रछाया में भगवान् बुद्ध द्वारा बुद्धत्व-प्राप्ति के पुण्य स्मृति दिवस के रूप में मनायी जाती है। उस अपूर्व आनन्दमय क्षण से आज अभी इस क्षण तक मैं वही हूँ, सद्‌गुरुदेव के परम पुनीत श्री चरणों का केवल एक विनीत दास, एक सेवक ।

उन्होंने हमें जिस जीवन-शैली का प्रशिक्षण दिया, हमारे लिए जो मार्ग प्रशस्त किया, मैं अपनी सर्वाधिक सामर्थ्यानुसार एक आज्ञाकारी शिष्य की भाँति ही, उसी के अनुरूप अपना जीवन यापन करता रहा हूँ। बहुविध

रूपों में गुरु- सेवा कार्य का मैं यथासम्भव प्रयास करता रहा हूँ। बहुत से भक्तजन मुझे अपना गुरु या सद्‌गुरु मानते हैं, क्योंकि वे मुझसे दीक्षित हुए हैं। सद्‌गुरु भगवान् के प्रथम दर्शन की मंगलमय उस धन्य घड़ी से लेकर आज अर्द्ध शताब्दी-पचास वर्षों से भी अधिक समय हो गया है। वस्तुतः, मन्त्र दीक्षा देना भी निरन्तर गुरु-सेवा का ही एक अभिन्न अंग रहा है। उनके साथ मेरा व्यक्तिगत प्रत्यक्ष सम्पर्क सन् १९४३ से सन् १९६३ की जुलाई- श्री गुरुदेव की महासमाधि निर्वाण तिथि - तक केवल बीस वर्ष रहा। ३५ वर्ष पूर्व उस दिन ही वे हमारे बाह्य चर्म चक्षुओं से अदृश्य हो गये थे। तब से अब तक इन ५५ वर्षों में जो कुछ मैं रहा, अपने ऐहिक जीवन के अन्तिम क्षण तक वही भाव एक आज्ञाकारी शिष्य, एक सर्व समर्पित सेवक का भाव ही मुझमें समाहित रहेगा।

चिदानन्द कौन (?) बारह सौ वर्षों से भी अधिक समय पूर्व जगद्‌गुरु आदि शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित दशनामी संन्यास-परम्परा अनुसार मुझे गुरुदेव ने संन्यास आश्रम में दीक्षित कर 'चिदानन्द' नाम से अभिहित किया था। अतः सब पूर्णतया सुस्पष्ट ही हो जाता है। चिदानन्द का आशय है - चित् अर्थात्त चैतन्य और आनन्द। तीन पदों के सम्मिलन, सत्-चित्-आनन्द अर्थात् सच्चिदानन्द का ही यह एक अंग है; जो परम गूढ़, परमोच्च, अनुभवातीत तथा अवैयक्तिक है, परिपूर्ण है, वैश्विक दिव्य सिद्धान्त का द्योतक है, अनादि और अद्वैत सत्ता है यह। उपनिषदों में वर्णित चित्रित ब्रह्म यही है; आत्म-बोध का विशुद्ध-निर्मल सारातिसार है। इस प्रकार आत्म-चैतन्य अवर्णनीय है, त्रिगुणातीत है, और है अति सूक्ष्म। यह किसी प्रज्ञावान प्रबुद्ध के अन्तस्तल की अतल गहराई में ज्योतिर्मय अनुभूति है, परम प्रशान्ति की अवस्था है। अपने गीता-ज्ञानोपदेश में भगवान् श्री कृष्ण ने इसे अज्ञान तिमिर से परे ज्योतियों की ज्योति निरूपित किया है-

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते । १३-१७।।

यह अनादि अनन्त, नाम-रूप-आकार-रहित है, दिक्कालातीत है, कल्पनातीत है, विचारातीत है, भावातीत है तथा है शब्दातीत। यह शाश्वत तत्त्व समय और स्थान से परे, अपरिवर्तनशील, चिरस्थायी, अप्रकटीकृत, निर्मल चैतन्य स्वरूप है। यह आद्य परम सत्य है, तत्त्वात्मक सार है। वस्तुतः यह 'एकमेव अद्वितीयं सत्' है। अतः जब यह एक है और अद्वय है, तब फिर दूसरा कौन शेष है जो इसका पारिभाषिक निरूपण करेगा? और जब कोई अन्य इसका श्रवण करने वाला नहीं, तो किससे उसका बखान किया जाए? अतएव यह मन, बुद्धि, इन्द्रियों, एवं सब प्रक्रमों, प्रक्रियाओं से परे है। 'वहीं' केवल 'वही' है। अन्य कोई नहीं, जब अन्य किसी का अस्तित्व नहीं, तो चिदानन्द कौन? यह प्रश्न स्वतः ही शून्य में विलय हो जाता है। रह जाता है अखण्ड अन्तर्मौन ! चिदानन्द कौन ? विलीन होने पर शेष रह जाती है गहन शान्ति, गम्भीर नीरवता, निःशब्दता, निःस्पन्दता, निस्तब्धता एवं सर्वोच्च प्रशान्ति। यही है परिशुद्ध निर्मल चेतनता, चित् और आनन्द। वही आप भी हैं। यही है अपरोक्षानुभूति।

ॐ तत् सत् ! ॐ शान्ति !

ॐ आनन्द !

आप सब दिव्य आनन्द में मग्न रहें। सदा सर्वदा आनन्दित रहें। स्वामी चिदानन्द

चिदानन्द हूँ !! ॐ

श्री स्वामी चिदानन्द

पूजनीय गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द के योग्य आध्यात्मिक उत्तराधिकारी श्री स्वामी चिदानन्द के विषय में कहा गया है- "यदि कोई कृश काया के पीछे छिपे आत्मवीर को, सौम्य चेहरे के पीछे छिपे नियन्त्रित हृदय को, कर्म की गतिशीलता के पीछे छिपी गहन मानसिक शान्ति को तथा व्यक्तिगत स्तरीय प्रेम-परिचर्या के पीछे छिपी निर्वैयक्तिक अनासक्ति का दर्शन करना चाहता है, तो उसे स्वामी चिदानन्द से भेंट करनी चाहिए।"

स्वामी चिदानन्द ने दक्षिण भारत के एक समृद्ध परिवार में २४ सितम्बर १९१६ को जन्म लिया था। प्रारम्भ से ही परम्पराओं और कर्मकाण्डों में उनकी रुचि थी। मद्रास (चेन्नै) स्थित लोयोला कालेज के वे एक प्रतिभाशाली विद्यार्थी थे। उन पर जीसस क्राइस्ट के आदर्शों और उपदेशों की बहुत गहरी छाप पड़ी। उन्होंने हिन्दू-संस्कृति के तत्त्वों के साथ उनका समन्वय कर लिया। श्री रामकृष्ण परमहंस देव तथा अपने गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द से वे अत्यधिक प्रभावित रहे। वर्ष १९४३ में वे गुरुदेव की शरण में आ गये। तबसे उनके गुरुदेव का आश्रम उनका घर बन गया तथा द डिवाइन लाइफ सोसायटी के महान् आदर्श उनके सेवा-कार्यों की आधारशिला बन गये ।

प्रारम्भ से ही स्वामी चिदानन्द में रोगियों और दुःखी व्यक्तियों की सेवा करने का अतीव उत्साह था। अपनी बाल्यावस्था में उन्होंने अपने घर के लॉन में कुष्ठियों के लिए झोपड़ियाँ निर्मित करवा दी थीं और उन्हें देव-तुल्य मान कर वे उनकी परिचर्या किया करते थे।

अपने आध्यात्मिक पुत्र तथा प्रिय शिष्य स्वामी चिदानन्द के विषय में स्वामी शिवानन्द ने कहा था- "चिदानन्द जीवन्मुक्त, महान् सन्त, आदर्श योगी तथा परा भक्त हैं। इसके अतिरिक्त भी वे बहुत कुछ हैं। अपने पिछले जन्म में वे एक महान् योगी तथा सन्त थे। उनके प्रवचन उनके पवित्र हृदय के भावोद्गार तथा उनकी प्रातिभज्ञानात्मक प्रज्ञा के प्रकटीकरण हैं। वे एक व्यावहारिक वेदान्ती हैं। उनके शब्दों में अद्भुत प्रभावक शक्ति है। एक महान् मिशन को पूरा करने के लिए उन्होंने जन्म लिया है।"

एक उत्कृष्ट संन्यासी के रूप में आध्यात्मिक चुम्बकत्व के गुण के धनी स्वामी जी अनगिनत व्यक्तियों के प्रियपात्र बन गये तथा संसार-भर में दिव्य जीवन के महान् आदर्शों के पुनरुज्जीवन के लिए सभी दिशाओं में कठिन परिश्रम करते-करते अन्ततः २८ अगस्त २००८ को ब्रह्मलीन हो गये।

A DIVINE LIFE SOCIETY PUBLICATION

HC 07 85/-